इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ६ अंक ३ आश्विन मास कलियुगाब्द ५११८ अक्तूबर २०१६

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादन सहयोग :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव-नेरी, डाकघर-खगल
जिला-हमीरपुर-१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०१६७२-२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक - १५.०० रुपये
वार्षिक - ६०.०० रुपये
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

आध्यात्मिक जीवन—मानवता का ध्येय — स्वामी श्रीरंगङ्गनाथनन्द महाराज — ३

Ancient India : The Cradle of knowledge & information — Dr. B.C. Chauhan — ११

कृषि दर्शन

कुल्लू की फसलें — मौलू राम ठाकुर — २१

व्यक्तित्त्व

गढ़वाल के यशस्वी सेनापति माधोसिंह भण्डारी — डॉ. सुशील कुमार कोटनाला — ३३

शेष-अशेष

ठाकुर राम सिंह जी के साथ मेरा अनुभव — मोतीलाल जालान — ३८

ध्येय पथ

ठाकुर रामसिंह शताब्दी समारोह — चेतराम गर्ग — ४३

सम्पादकीय

ॐ शान्ति का सनातन संस्कार

ऋषि अनुप्राणित **सर्वे भवन्तु सुखिनः** सभी सुखी रहें की विश्व कल्याण भावना भारतीय जनमानस के स्वभाव में सहजता से परिव्यापत है। राष्ट्रमानस के इस स्वाभाव में **ॐ शान्ति** का सनातन संस्कार सन्निहित है। हमारे परम्परागत सभी अनुष्ठान शान्ति पाठ से सम्पन्न होते हैं। यजुर्वेद में उल्लिखित शान्ति पाठ के मन्त्र में सर्वत्र शान्ति के ध्येय की कामना करते हुए कहा गया है –

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पत्यः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

द्युलोक में शान्ति हो, अन्तरिक्ष में शान्ति हो, पृथ्वी लोक में शान्ति हो, जल में शान्ति हो, ओषधियों में शान्ति हो, वनस्पतियों में शान्ति हो, समस्त देवताओं में शान्ति हो, ब्रह्म में शान्ति हो, सब कुछ शान्तिदायक हो, सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो और हमें निरन्तर शान्ति प्राप्त हो।

शान्ति के सनातन संस्कार से सम्पन्न भारतवर्ष में कभी भी शौर्य शक्ति की उपेक्षा नहीं की गई है। जब कभी सुबाहु, ताड़का, मारीच आदि आसुरी सम्पदा वाले लोग शान्ति भंग करने का प्रयास करते हैं तो शान्ति की संस्थापना के लिए शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। आश्विन कृष्ण त्रयोदशी, कलियुगाब्द ५११८ एवं आश्विन प्रविष्टे १३, विक्रमी संवत् २०७३ तदनुसार २८-२६ सितम्बर, २०१६ की रात्रि को पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के आतंकी ठिकानों पर भारतीय सेना ने निस्संदेह अदम्य साहसिक और अकल्पनीय कार्यवाही की जिससे भारत सरकार और भारतीय सेना की व्यापक सराहना हुई है। **शठे शाठ्यं समाचरेत्** अर्थात् दुष्टों से उन्हीं के अनुरूप व्यवहार की नीतिपूर्ण इस कार्यवाही का अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समुचित कार्यवाही में श्रीमद्भगवद्गीता के इस उपदेश का अनुकरण है कि कर्मपथ पर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए युद्ध करना कोई पाप नहीं है –

ततो युद्धाययुज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

राष्ट्रनिष्ठा, विवेकशीलता और तत्परता के साथ किया जाने वाला यह कर्त्तव्य पालन राष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति की संस्थापना का श्रेष्ठ मार्ग है।

ओम शान्ति! शान्ति! शान्ति!

विनीत,

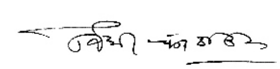

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

संवीक्षण

आध्यात्मिक जीवन– मानवता का ध्येय

स्वामी श्रीरङ्गनाथनन्द महाराज

मानव जाति के इतिहास में कभी मानव अस्तित्व के ध्येय की व्याख्या करने की इतनी तीव्र आवश्यकता नहीं अनुभव की गई जितनी आज की जा रही है। यह केवल बुद्धि विलास का प्रश्न नहीं है, अपितु यह आधुनिक युग के सामान्य एवं असामान्य, प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी स्त्री पुरुषों के हृदय में स्वतः उठा हुआ प्रश्न है। अपनी धार्मिक सम्पति के आलोक में इन सहस्रों वर्षों से मानवता आध्यात्मिकता को मानव जीवन का ध्येय मानती आई है, किन्तु पाश्चात्य यूरोपीय जातियों द्वारा वर्तित बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति के कारण पिछली शताब्दियों में उस धार्मिक सम्पति का बल शिथिल पड़ गया है। इसीलिए उस क्रान्ति के स्वरूप की समीक्षा करने तथा उसके प्रकाश में मानव अस्तित्व के ध्येय को फिर से घोषित किए जाने की आवश्यकता है।

आधुनिक विज्ञान की समीक्षात्मक एवं प्रयोगात्मक विधियों के कारण पश्चिमी यूरोप में सत्रहवीं शताब्दी में जो शक्तिपूर्ण यन्त्र कौशलीय सभ्यता उत्पन्न हुई, उसके तीव्र आघात को समस्त संसार में मानवता ने अनुभव किया। यह आघात का धक्का विचार एवं विश्वास को भी उसी प्रकार लगा है, जिस प्रकार जीवन एवं आचरण को लगा है। प्रकृति एवं मानवीय अनुभव सम्बन्धी बुद्धिसंगत खोज के परिणामों एवं विधियों का पाश्चात्य मानव के अपरीक्षित मतों एवं विश्वासों से जो उसके धर्म की वैचारिक पृष्ठभूमि को प्रायः सहस्राधिक वर्षों से घेरे हुए थे अधिकाधिक संघर्ष होता गया। तब आधुनिक विचार ने पुरानी वैचारिक पृष्ठभूमि को अपदस्थ कर दिया, तब धर्म का मूल्य अपने आप घट गया और उन्नीसवीं शताब्दी ने देखा कि आधुनिक पाश्चात्य मानव ने अपनी आस्था धर्म से हटाकर भौतिक मूल्यों पर जमा दी है। सत्रहवीं शताब्दी में आधुनिक विज्ञान ने जिस यन्त्र कौशल सम्बन्धी क्रान्ति का आरम्भ किया था, उसने इन भौतिक सांसारिक मूल्यों को बढ़ाने में सहायता की और अगली ढाई शताब्दियों में मानव की सांसारिक बुभुक्षा को बहुत तीव्र कर दिया। और चूंकि आधुनिक यूरोप ने समस्त संसार में राजनीतिक, व्यापारिक तथा सांसारिक दृष्टि से प्रवेश पा लिया था, इसलिए न्यूनाधिक प्रबलता के साथ इन आघातों और दबाबों का शेष संसार में भी अनुभव किया गया। आज सारा संसार सत्रहवीं शताब्दी की यूरोपीय वैज्ञानिक क्रान्ति से उद्भूत भौतिक, मानसिक तथा सामाजिक प्रभावों की मुट्ठी में है।

इन प्रभावों में शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के तत्त्व सम्मिलित हैं। प्रथम में आधुनिक सभ्यता का उज्ज्वल रूप है – दूरी का लोप तथा विश्व का भौतिक ऐक्य साधन, व्यक्ति के सम्मान एवं मूल्यपर आधारित लोकतन्त्र का सिद्धान्त तथा आचरण, विश्वव्यापी पैमाने पर सामाजिक कल्याण की अनेकविध योजनाएं तथा कार्य, धार्मिक सहिष्णुता में अभिवृद्धि, एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का

क्रमिक विकास। ये सब बातें विज्ञान द्वारा बाह्यप्रकृति पर विजय प्राप्त करने से पैदा हुई हैं और मानव इतिहास में ये सफलताएं अभूतपूर्व हैं।

अशुभ तत्त्वों ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से अपने को प्रबल रूप में स्थापित करना आरम्भ किया; स्वार्थ, हिंसा एवं युद्ध की गति बढ़ी। सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप ने तीस वर्षीय धार्मिक युद्धों के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में मानवी निष्ठा के केन्द्र धर्म को निर्वासित कर दिया और उसके स्थान पर विषयों का महत्त्व स्थापित किया। इस प्रकार धर्म को निर्वासित करने पर भी उसके सम्बन्ध में पाश्चात्य मानव में एक तीव्र भावना रही कि वह जीवन से एक गम्भीर मूल्यवान् वस्तु को दूर कर रहा है। किन्तु वह विवश था; क्योंकि वह मूल्यवान् वस्तु उसके सामने तर्कविरुद्ध तथा समाज विरोधी तत्त्वों से आच्छादित होकर आई थी, जो उसके नवप्राप्त वैज्ञानिक तथा तर्कप्रधान स्वभाव, उद्देश्यों तथा विधियों के लिए – विरोधी सी लगती थी।

विश्व इतिहास के वर्तमान विशेषज्ञ प्रो. ए. जे. ट्वायनबी (Toynbee) लिखते हैं – धार्मिक युद्धों के अनौचित्य पर नैतिक रोष का जो विस्फोट हुआ, उसने मध्ययुगीन पाश्चात्य ईसाई सार्वभौमदृष्टि (वेल्टनशाउंग (Weltanschauung) की सुदृढ़ प्राचीरों को ही उड़ा दिया। इस नैतिक विद्रोही की क्रियात्मक अभिव्यक्ति यह हुई कि सत्रहवीं शताब्दी के पाश्चात्य मानव की आध्यात्मिक विधि को एक असाध्य रूप से विवाद ग्रस्त धर्मशास्त्र से हटाकर एक आपाततः निर्विवाद प्राकृतिक विज्ञान में स्थापित कर दिया गया। फलतः पाश्चात्य ईसाई मत का बौद्धिक ढांचा धीरे-धीरे ढह गया। यह ईसाई मत के नैतिक दावों के विरुद्ध पहले जो विद्रोह हुआ उसी का प्रभाव था।[१]

यद्यपि सत्रहवीं तथा परवर्ती शताब्दियों की वैज्ञानिक क्रान्ति ने धर्म को निर्वासित कर दिया और जीवन को धर्मनिरपेक्ष बना दिया, फिर भी उसने बाह्य प्रकृति पर मनुष्य को पर्याप्त सीमा तक प्रभुत्व प्रदान किया; साथ ही उसका अपनी अन्तः प्रकृति पर जो नियन्त्रण था, उसे शिथिल भी कर दिया, जिससे उसके आन्तरिक जीवन का दीवाला निकल गया तथा आधुनिक सभ्यता के पूर्वोक्त अशुभ तत्त्वों को सामने आने का अवसर मिल गया। धर्म ने मनुष्य के सामने इन्द्रियों से मुक्ति दिलाने वाला एक साधन रखा था; इसके विरुद्ध आधुनिक सभ्यता ने उसे इन्द्रियों की स्वतन्त्रता की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चले आने के लिए निमन्त्रित किया। चूंकि दोनों में यह दूसरा मार्ग सरल था और मनुष्य के प्राकृतिक आवेगों और प्रवृत्तियों को खुला खेलने की स्वतन्त्रता देता था, इसलिए हर जगह वह इसकी ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार आधुनिक सभ्यता का तत्त्वज्ञान मानव की सहज बुभुक्षा को उत्तेजित करता है और दिन-दिन उन्नत हो रहा यन्त्र कौशल उस भूख को संतुष्ट, तृप्त करने का प्रयत्न करता है। यह भूख एवं तृप्ति की परस्पर होड़, धर्म द्वारा नियोजित रुकावटों और प्रतिबन्धों से मुक्त न होकर, १७ वीं शताब्दी के आरम्भ से २० वीं शताब्दी के आरम्भ तक, दर्शनों एवं विचारधाराओं को आलोकित करती हुई मानवप्रयत्नवाद की आशाओं से तथा प्रकाश, हेतुवाद, मानवतावाद और प्रगति के नारों में व्यक्त होकर आनन्द पूर्वक चलती रही।

ट्वायनबी लिखते हैं – सत्रहवीं शताब्दी के पिछले दशकों के पाश्चात्य मानव की दृष्टि में पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य उतार लाने की अपेक्षा एक पार्थिव स्वर्ग की सृष्टि करने का प्रयत्न अधिक

व्यावहारिक लक्ष्य के रूप में दिखाई पड़ा। पाश्चात्यों के पिछले अनुभव ने प्रकट कर दिया था कि पृथ्वी पर स्वर्ग राज्य के विशेष विवरणों को लेकर धर्मशास्त्रियों के प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों के बीच कटु एवं अनवरत झगड़े होते रहे हैं; इसके विरुद्ध व्यावहारिक यन्त्रशिल्पियों या प्रयोगशील वैज्ञानिकों के बीच मतभेद के ठंडे हो जाने की ही नहीं, अपितु निरीक्षण के निष्कर्ष तथा निरीक्षा के परिणामविषयक तर्क से, जिसपर कोई मतभेद नहीं होता, बहुत शीघ्र उसके दूर हो जाने की भी संभावना थी।[२]

ट्वायनबी आगे फिर लिखते हैं – पर इस सत्य का अनुभव नहीं किया गया कि **अपने निर्विवाद आविष्कारों द्वारा आपाततः त्रुटिरहित ये यन्त्र-कलाकोविद् एक ऐसे नवीन प्रकार की शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं, जिसका प्रयोग आगे चलकर उनके हाथों नहीं तो अन्य हाथों द्वारा वर्तमान संतुलन को बिगाड़ने में किया जा सकता है।**[३]

वैज्ञानिक, यन्त्रकलासम्बन्धी तथा सामाजिक क्रान्तिकारीणी उपलब्धियों की ढाई शताब्दियों बाद उन्नीसवीं शताब्दी पाश्चात्य मानव की इस अनबुझी आशा के साथ समाप्त हुई कि एक पूर्ण जगत् का आगमन बस होने ही वाला है। प्रगति की शताब्दी की इस मनोदशा को प्रकट करते हुए ब्राउनिंग ने गाया था, ईश्वर अपने स्वर्ग में हैं और संसार में सब कुछ ठीक-ठाक है।

इस सरल आशावाद को प्रथम आघात १९१४-१८ के विध्वंसक विश्व-युद्ध से लगा। एक इन्द्रियाराम सभ्यता के हृदय में उत्पन्न होकर लोभ, हिंसा एवं युद्ध के अशुभ तत्त्वों ने अपनी प्रबलता स्थापित करना आरम्भ कर दिया था। इस विश्वयुद्ध ने आधुनिक पाश्चात्य विचारकों में आत्मपरीक्षण एवं आत्मशोध का एक आन्दोलन ही चला दिया। हमारी सभ्यता में कौन-सी बुराई आ गई है – यह विषय बड़ी गंभीर आलोचना एवं टीका का केन्द्र बन गया, स्पेंगलर जैसे ऐतिहासिकों ने पाश्चात्य सभ्यता के ह्रास पर लिखा, दूसरे विचारकों ने उसके मूलभूत धर्मनिरपेक्ष तत्त्वों का समर्थन किया और अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी प्रयत्नों द्वारा कुछ छोटे-मोटे सुधारों पर जोर दिया। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध वाला संकट युद्ध समाप्त हो जाने पर भी दूर नहीं हुआ, बल्कि संकटों की एक मालिका के रूप में कभी बोल्शेविक क्रान्ति, कभी फासिस्ट एवं नात्सी प्रभाव एवं लोभ, असहिष्णुता तथा हिंसा के बढ़ते हुए ज्वार के रूप में व्यक्त हुआ और अन्ततोगत्वा १९३९-१९४५ के द्वितीय विश्व युद्ध के अभूतपूर्व संकट के रूप में फूट पड़ा। इसी महायुद्ध के अन्त में स्वयं आविष्कारक को खा जाने वाले दानव अणु बम का आविष्कार हुआ। आधुनिक यन्त्रविज्ञान प्रधान सभ्यता ने पार्थिव स्वर्ग के निर्माण की जो आशा मनुष्यता को दिलाई थी, वह इस युद्ध की समाप्ति के साथ ही विलीन हो गई। **मानवता ने मानव इतिहास के अणु-युग में प्रवेश किया। इसमें मानव के लिए उज्ज्वल भविष्य की आशा है, यदि उसके विचार एवं कार्य का पथदर्शन विवेक करता है, पर इस आशा के साथ अशेष विश्व संहार का भय भी है, यदि उसका पथ दर्शन अविवेक के हाथ में रहता है।**

बरट्रेंड रसेल कहते हैं – हम साधन विषयक मानवीय कौशल तथा साध्यविषयिणी मानवीय मूढ़ता के मध्य हो रही दौड़ के बीच में अपने को पाते हैं। और अन्त में कहते हैं – **जब तक ज्ञान के साथ मनुष्यों के विवेक में भी सामान्तर वृद्धि नहीं होती तब तक ज्ञान की वृद्धि से दुःख की ही वृद्धि होगी।**[४]

भारतीय चिन्ताधारा बहुत पहले घोषणा कर चुकी है कि इन्द्रियाराम मनुष्य अशान्ति संघर्ष

तथा शोक का केन्द्र होता है। सांसारिक ज्ञान केवल उसकी पाशव बुभुक्षा को तीव्र करता तथा उसके आन्तरिक संघर्ष को बढ़ाता है। जो सभ्यता मनुष्य को केवल इन्द्रियाराम व्यक्ति के रूप में ही जानती है और उसकी पाशविक बुभुक्षाओं को तीव्र करती तथा उनकी तृप्ति की व्यवस्था करती है, बालू पर बनी कमजोर इमारत के समान है। वह अपने ही आन्तरिक संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्वों से कालान्तर में, ढह जाएगी। **ईसाने कहा था कि विवेकवान् अपना मकान चट्टानों पर बनाता है जब मूर्ख उसे बालू पर उठाता है। पश्चिम ने ईसा की इस चेतावनी का तिरस्कार किया है। विवेकवान् एवं सहानुभूतिशील विचारक आधुनिक सभ्यता के इस चिन्ताजनक पहलू से परिचित थे।**

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – **यदि कोई आध्यात्मिक आधार न मिला तो अगले पचास वर्षों में सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता टूटकर चकनाचूर हो जाएगी।** मनुष्य जाति पर तलवार से शासन करने का प्रयत्न निराशापूर्ण एवं सर्वथा निरर्थक है। आप देखेंगे कि बलात् सरकार स्थापित करने जैसी धारणा जिन केन्द्रों से उद्‌भुत हुई, वे ही सबसे पहले पतित एवं अधोगामी हुए तथा चूर-चूर हो गए। भौतिक शक्ति के प्रकाश के केन्द्र यूरोप ने यदि अपनी स्थिति में परिवर्तन करने की परवा न की और अपनी भूमिका बदलकर आध्यात्मिकता को जीवन का आधार नहीं बनाया तो पचास वर्षों के भीतर ही वह चूर-चूर हो जाएगा।[४]

भारत बराबर इस विचार को ग्रहण किए रहा है कि आध्यात्मिकता ही वह दृढ़ाधार है, जिसपर एक दृढ़ चरित्र या सभ्यता का निर्माण किया जा सकता है। वह किसी समाज या सभ्यता का मूल्य इस बात पर आंकता था कि उसके नागरिकों ने कितनी आध्यात्मिकता का अर्जन किया है। उसने घोषणा की कि मानव की श्रेष्ठता उसके अन्दर ईश्वरत्व के प्रकाश को लेकर ही है और जो अनुशासन इसे संभव बनाता है, वहीं धर्म है किन्तु भौतिक विज्ञान, यन्त्रकौशल या राजनीति स्वयं अपने में धर्म नहीं है। ये गौण है, धर्म मुख्य प्राथमिक वस्तु है। मानव के बाह्य जीवन में व्यवस्था एवं प्रकाश लाकर ये मानव के आन्तरिक जीवन को समृद्ध एवं गंभीर करने में धर्म की सहायता करते हैं। मानव जीवन के प्रसंग में देखें तो इन दोनों मूल्यों एवं अनुशासनों के बीच कोई संघर्ष नहीं है, न हो सकता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में धर्म असहिष्णु एवं विज्ञान विरोधी रहा। इससे भी बड़ी दुर्भाग्य की बात यह है कि सत्रहवीं शताब्दी के पाश्चात्य वैज्ञानिक एवं यन्त्र शिल्पियों द्वारा तथा इन तीन शताब्दियों में उत्पन्न उनके उत्तराधिकारियों द्वारा भी धर्म एवं विज्ञान दो परस्पर विरोधी अनुशासन एवं मूल्य समझे गए। पाश्चात्य धार्मिक असहिष्णुता यह सिद्ध नहीं करती कि धर्म में तत्त्वतः या अनिवार्यरूपेण कोई असहिष्णुता होती है। भारतीयों का अनुभव कुछ दूसरा ही रहा है। सर्व समन्वयात्मक दार्शनिक सिद्धान्त के प्रकाश में भारत न केवल विज्ञान एवं धर्म के बीच सामंजस्य का दर्शन एवं समर्थन करता है बल्कि धर्म-धर्म के बीच भी इस प्रकार का भाव रखता है जैसा एक ही लक्ष्य की ओर जानेवाले पथिकों के बीच होता है। क्योंकि लक्ष्य एक है, मार्ग अनेक हैं।

ट्वायनबी लिखते हैं – फेरिसेइज्म (बाह्याचारप्रधान यहूदी मत, बाह्याचार) यहूदी वर्ग के विविध धर्मों का वातावरण रहा है और इस पाप ने अत्याचारों एवं आकस्मिक विपत्तियों की एक दुःखात्मक शृङ्खला के रूप में अपने ऊपर ही दण्ड प्रहार किया। फरिसेइज्मका फल असहिष्णुता है,

असहिष्णुता का फल हिंसा है और पाप का पुरस्कार मृत्यु है।[६] इसके बाद भारतीय धर्म भावना के विषय में लिखते हुए वे कहते हैं – यह एक ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है कि अभी तक यहूदी – वर्ग के धर्म भारतीय धर्मों की अपेक्षा अधिक कट्टरपंथी रहे हैं। **विश्व इतिहास के एक ऐसे अध्याय में जहां उच्चतर जीवित धर्मों के अनुयायी पूर्वापेक्षा परस्पर अधिक घनिष्ठ सम्पर्कों में प्रवेश करते दिखाई पड़ते हैं, भारतीय धर्मों की अन्तर्भावना जहां भी पहुंच पाएगी, मुस्लिम, ईसाई एवं यहूदी हृदयों से परम्परागत पाखण्ड वा धर्मान्धता को निकाल बाहर करेगी।**[७]

विज्ञान एवं धर्म दोनों का घोषित उद्देश्य मानव जीवन का समृद्धीकरण तथा अभिवर्द्धन है। **विज्ञान के बिना धर्म असहाय है, जब कि बिना धर्म के विज्ञान खतरे से भरा हुआ है।** इस प्रकार जब दोनों परस्पर पूरक हैं, धर्म मानवीय समस्याओं में अधिक गहरा प्रवेश करता है तथा समस्त मानवीय कर्म एवं प्रयत्न की दिशा निर्धारित करता है और यह दिशा निर्धारण आध्यात्मिक दिशा निर्धारण है, प्रत्येक स्त्री पुरुष में प्रच्छन्न आध्यात्मिक निधि का व्यक्तिकरण है। धर्म न केवल लक्ष्य का निर्धारण करता है परन्तु मार्ग भी बताता है। लक्ष्य है आध्यात्मिक मुक्ति – सम्पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक, बाह्य एवं आन्तरिक बन्धनों से मुक्ति, जिससे मानवात्मा अपने वास्तविक, शुद्ध एवं भागवत रूप में प्रकाशित हो और मार्ग है प्रकृति के रहस्य को समझकर उसके ऊपर नियन्त्रण स्थापित करके बाह्य प्रकृति पर विज्ञानद्वारा एवं अन्तः प्रकृति पर नीति एवं धर्म द्वारा प्रशिक्षण। इस प्रकार जीवन एवं अनुभव मनुष्य के लिए विवेकपूर्ण आत्मानुशासन का एक शृंखलाबद्ध शिक्षालय बन जाते हैं। इस आत्मानुशासन द्वारा बाह्य एवं आन्तरिक तत्त्वों का ज्ञान एकीभूत होकर विवेक में विलीन हो जाता है। यही गीता का बुद्धि योग है, जो मानव को इन्द्रियाराम के स्तर से ऊपर उठने तथा विवेक का आश्रय लेने की शिक्षा देता है –

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।[८]

भारत के सनातन धर्म की यह शिक्षा स्वामी विवेकानन्द के एक संक्षिप्त, पर विशद वक्तव्य में व्यक्त हुई है –

प्रत्येक आत्मा में ईश्वरता छिपी है।

लक्ष्य है उस अन्दर के ईश्वर को बाह्य एवं अन्तः प्रकृति के नियन्त्रण द्वारा प्रकाशित करना।

इसे कर्म, उपासना, राजयोग वा तत्त्वज्ञान– इनमें से किसी एक या एकाधिक या सबके द्वारा सम्पन्न करो और मुक्त हो जाओ।

यही है सम्पूर्ण धर्म। सिद्धान्त, मतवाद, कर्मकाड या शास्त्र या मन्दिर या बाह्य रूप–सब विस्तार की गौण बाते हैं।[९]

आधुनिक विज्ञान एवं यन्त्रशिल्प ने आधुनिक मानव के हाथ में जो विशाल ज्ञान–भंडार तथा शक्ति रख दी है, उसके होते हुए भी वह जो इतना असंतोष एवं संघर्ष का अनुभव करता है और आज उससे मुक्ति देने वाले ज्ञान की जो खोज कर रहा है, उसे देखकर हमें परम ज्ञानी नारद जी की वह कथा याद आती है, जिसमें वे ज्ञान की खोज में ऋषि सनत्कुमार के चरणों में उपस्थित होते हैं। यह

कथा छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित है।

जो विशाल ज्ञान नारद प्राप्त कर चुके थे, उन सबका उल्लेख करने के बाद तथा यह स्वीकार करते हुए कि मैं अभीतक दुःख एवं संघर्ष के पाश में बंधा हुआ हूं, उन्होंने कहा – भगवन्! मुझे उपदेश दीजिए। मैं केवल शब्द एवं उनका अर्थ जानता हूं, किन्तु आत्मा को नहीं जानता जो मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है और मैंने आप सरीखे महान् गुरुओं से सुना है कि केवल आत्मज्ञानी ही दुःख पर विजय पा सकता है। इसलिए हे भगवन्! इस दुःख सागर को पार करने में मेरी सहायता कीजिए।

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः। तꣳहोवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति। सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्। श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु।।[१०]

और गुरु उस ज्ञान का स्वरूप एवं मार्ग की व्याख्या करके मानव के लिए आध्यात्मिक आशापूर्ण अत्यन्त श्रेयस्कर वचन कहते हुए अपने उपदेश का उपसंहार करते हैं – **आहारशुद्धौ सत्तवशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृति-लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।**

आहारशुद्धि से अन्तःकरण शुद्ध होता है, अन्तःकरण शुद्ध होने से स्मृति ध्रुव हो जाती है, स्मृति-लाभ से सर्वबन्धनों से मोक्ष हो जाता है।[११]

उपनिषद् में आगे और भी कहा गया है – जिन्होंने हृदय की पूर्ण पवित्रता में अपने को ढाल लिया था, उन नारद को ऋषि सनत्कुमार ने सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार के परे जो (ब्रह्म का) प्रकाश है, उसका दर्शन कराया –

तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः।।[१२]

भारतीय विचारधारा यह है कि मुक्ति मानव-आत्मा का स्वरूप है पर मनुष्य देखता है कि वास्तविक जीवन में वह स्वतन्त्र नहीं है, उसकी बाह्य और आन्तरिक प्रकृति प्रतिपगपर उसका अवरोध करती है। चूंकि उसकी आत्मा में यह स्वातन्त्र्य, यह मुक्ति निहित है और वह वास्तविक जीवन में बन्धन का अनुभव करता है, इसलिए भगवान की सृष्टि में मानव ही एक अशान्त पथिक बन जाता है और स्वातन्त्र्य तथा शान्ति को पाने के लिए उसका जीवन एक युद्धक्षेत्र सा बन जाता है। भौतिक पोषणों, सामाजिक सुखों, राजनीतिक स्वातन्त्र्य, बौद्धिक ज्ञान, नैतिक उत्थान तथा आध्यात्मिक मुक्ति के लिए इतिहास में निरन्तर जो प्रयत्न और संघर्ष होते रहे हैं, उनका यही तात्पर्य है।

स्वातन्त्र्य के लिए, मुक्ति के लिए यह प्रयत्न सम्पूर्ण इतिहास में मनुष्य की सबसे आग्रहपूर्ण एवं सबसे शानदार खोज रही है। मानवात्मा अपने चतुर्दिक की शक्तियों से अवरुद्ध होना नहीं चाहता है। जब वह बाह्य जगत में इन शक्तियों को दबाने में सफल होता है, तब मनुष्य को सभ्यता प्राप्त होती है। यह उस विज्ञान एवं यन्त्रशिल्प से प्राप्त होती है, जो मानव इतिहास की यात्रा में प्रगति करता आदिम अवस्था से अणु-युग तक पहुंच गया है। जब आत्मा मन एवं हृदय के आभ्यन्तर जगत् में इन शक्तियों को पराजित कर लेता है, तब मानव को संस्कृति एवं नीति प्राप्त होती है। यह सदाचरण एवं धर्म से प्राप्त होती है और ये सदाचरण एवं धर्म भी अनेक भूमिकाओं से विकसित होते हुए विश्व के

महान् धर्मों की सर्वोच्च स्थिति में पहुंचे हैं।

इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्वातन्त्र्य का यह मूल्याकंन और उसके साथ शान्ति और सिद्धि अपने शुद्धतम एवं पूर्णतम रूप में केवल मानव के अन्तर्जीवन में ही प्राप्त होती है। उसके बाह्य जीवन में, उसके आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक पुरुषार्थ के क्षेत्रों में इनके सर्वोत्तम रूपों में भी उसकी आंशिक अभिव्यक्ति ही संभव है, क्योंकि इन क्षेत्रों में बाह्य नियन्त्रण किसी-न-किसी अंश में अनिवार्य है। कोई भी रोमाञ्चक, आकर्षक दर्शन इसे दूर नहीं कर सकता। जिस सभ्यता में आध्यात्मिक मूल्यों का प्राधान्य होगा, वहां वह कम-से-कम होगा और जिस सभ्यता में वैषयिक मूल्यों का प्राधान्य होगा वहां यह सबसे अधिक होगा – यहां तक कि उत्पीडक और कष्टप्रद रूप धारण कर लेगा। आज स्वतन्त्रता की बड़ी-बड़ी बातें सुनाई पड़ती है, फिर भी आधुनिक विश्व से सच्ची स्वतन्त्रता का लोप होता जा रहा है। यदि विवेक एवं शान्ति द्वारा या मूर्खता एवं युद्धद्वारा कल विश्व राज्य का निर्माण हो भी गया तो भी स्वतन्त्रता के कम एवं अधिक सत्य होने की तब तक कोई आशा नहीं, जब तक कि वर्तमान धर्मनिरपेक्ष **वेल्टनशाउंग** (विश्ववाद) विश्व-सभ्यता को प्रेरित करता रहेगा।

ट्वायनबी लिखते हैं – इन परिस्थितियों में भविष्यवाणी की जा सकती है कि विश्व इतिहास के अगले अध्याय में मानव जाति अपने अधिकांश राजनीतिक, आर्थिक एवं कदाचित् पारिवारिक स्वातन्त्र्य विषयक क्षतिपूर्ति आध्यात्मिक मुक्ति में अपनी अधिक पूंजी लगाकर करना चाहेगी।[१३]

विश्व में आत्मा का क्षेत्र ही स्वतन्त्रता का गढ़ होगा।[१४]

और हमारी आणविक सभ्यता के आध्यात्मिक पुनः संस्करण का समर्थन करते हुए ट्वायनबी (Tynbee) लिखते हैं –

हमारे लिए समय आ गया है कि सत्रहवीं शताब्दी की भौतिक एवं गणितीय दृष्टि के बन्धन से हम अपने को खींचकर, झटका देकर मुक्त कर लें – उस दृष्टि से जिसका हम अबतक अनुसरण करते जा रहे हैं और आध्यात्मिक दिशा की ओर पुनः नई यात्रा आरम्भ करें। यदि हमारा यह आशा करना ठीक है कि इस अणु युग, में जिसका १९४५ ई. में आरम्भ हुआ, भौतिक नहीं, आध्यात्मिक कार्यक्षेत्र ही मुक्ति का क्षेत्र होने जा रहा है तो इस समय पुनः दोनों दृष्टियों में से यही अधिक आश्वासनप्रद है।[१५]

भारतीय दर्शन घोषित करता है कि जगत् पूर्णतः चिन्मय है। इसकी सीमित एवं क्षणस्थाई अभिव्यक्तियों के भीतर एक ऐसी सत्ता है, जो असीम सत्, असीम चित् एवं असीम आनन्दरूप है। सीमित मानव का अन्त एवं लक्ष्य इस असीम आत्मा की साधना द्वारा पूर्णत्व की प्राप्ति है –

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।[१६]

भारतीय दर्शन की दृष्टि में यह अमर सत्य है कि आध्यात्मिकता ही जीवन का ध्येय है। यह बात इस अणु-युग में भी उतनी ही समनानुकूल है, जितनी उस उपनिषत्काल में थी, जिसमें आज से सहस्रों वर्ष पूर्व, उसका विवेचन हुआ था। यह शाश्वत सत्य, बड़े ही सुन्दर रूप में, श्रीमद्भागवत के

निम्नाकिंत श्लोक में व्यक्त हुआ है –

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।[१७]

निश्चित रूप से मानव का सर्वोच्च धर्म वही है, जिससे वह भगवान् की भक्ति प्राप्त करे – वह भक्ति जो शुद्ध, अप्रतिहत एवं अहैतुकी है। इस धर्म की उपलब्धि से मानव पूर्णता एवं शान्ति प्राप्त करता है।

संदर्भ :

१. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. १६६।
२. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. १८४।
३. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. १८६।
४. इम्पैक्ट ऑफ साएंस ऑन सोसायटी पृ. १२०-१२१।
५. कम्पलीट वर्क्स ऑक स्वामी विवेकानन्द, भाग ३, पृ. १५६।
६. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन, पृ. २६४।
७. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. २८२-८३।
८. भगवद्गीता, अध्याय ७, श्लोक ४६।
६. कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द, भाग १, पृ. ११६।
१०. छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१,३।
११. छान्दोग्य उपनिषद् ७।२६।२।
१२. छान्दोग्य उपनिषद् - ७।२६।२।
१३. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. २४४।
१४. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. २४६।
१५. ऐन हिस्टोरियंस अप्रोच टु रिलीजन पृ. २८४-२८५।
१६. तैत्तिरीय उपनिषद् २।१।१।
१७. श्रीमद्भागवत १।२।६।

Ancient India: The Cradle of Knowledge & Information

Dr. B. C. Chauhan

Since the time immemorial India has been a phenomenal source of fascination and a great material concept, knowledge and information resources to the planet. Takshashila University (in Pakistan now) was a great centre of learning where more than 10,500 students from all over the world used to study about 64 subjects. The other great Indian Universities viz. Nalanda, Vikramashila, Vallabhi and Odantapuri were the ancient light houses of knowledge and learning centres for the scholars of the whole world. To see the knowledge and educational developments in ancient India a need arises to go through the socio-economic, political and cultural history of the wonderland. In this work some light is being shed on the historical facts which divulge India as the origin of most of the scientific discoveries and inventions that have been credited by the western people. The inferences have been supported by the facts, findings and quotes of the historians and scholars. Contribution of the ancient Indians towards the broadening of the horizon of human consciousness is very great and quite legitimately the Indians must proud of it.

There is no doubt that till today India stands as the home of Spiritual Masters, where people from all over the world return to have a deep solace in the heat and dust of the holy soil. It is often claimed that India was a prosperous country and scientifically developed in the olden time. On the other hand, it is a fact that today materially and scientifically India is not as much progressed as the western countries are. So, there is a paradox: claim that ancient India was materially prosperous and scientifically developed and fact that today, quite opposite is seen on the land! How it can be? In order to understand this missing link one must go through the told and untold history of this sub-continent. There arises a need to go through the socio-economic, political and cultural history of the wonderland.

It is corroborated by the researchers that up to the 12th century, Europe was in the Dark Age. Historians call this period as the 'Dark Age', because there was no knowledge like mathematics, science, medicine etc. in Europe. Long back, there was enlightenment for a short period in a limited part of Europe, i.e. in Greek from 6th century BC for a few centuries by import of knowledge from India through Arabs

and Turks. This period is called the first awakening of Europe and the reappearance of knowledge in the 12^{th} -17^{th} century is called the 'Renaissance'. Historians uphold on the fact that Europeans learned much from the Arabs e.g. mathematics and the art of paper-making, and from the Chinese e.g. the printing of paper.

India has been the cradle of human civilization over the ages [1]. To learn and disseminate the knowledge was a matter of great pride. Chaturashram was the dominant social system prevalent in ancient India. The students of six to twenty four years age group used to receive instructions under the preceptors in the hermitage. They studied Vedas and its attendant philosophy and grammar. Subsequently, the study of literature, polity and economy, mathematics, science and astronomy were also included in the curriculum. Soon, it was felt, however, that one or two teachers in the hermitage were not in a position to teach all the subjects properly. So, they thought of the need of a higher centre of learning in a well developed and planned monastery. Several big and world famous universities were opened, like Takshashila (Taxila), Nalanda, Vikramashila, Vallabhi, Odantapuri and etc… These ancient light houses of knowledge were learning centers for the scholars of the whole world.

During the Maurya reign, under the patronage of state, Takshashila University (*in Pakistan now*) was a great center of dissipating knowledge to the deserving students mainly from India, west Asia and China. Some historians date the existence of this university back to the 6^{th} -7^{th} century BCE. It was a residential university where more than 10,500 students used to study about 64 subjects including Vedas, grammar, philosophy, ayurveda, agriculture, surgery, politics, archery, warfare, astronomy, science, mathematics, commerce, futurology, music, and dance etc. There were even curious subjects like the art of discovering hidden treasure, decrypting encrypted messages, etc.

During its time this university was the MIT, IIT of the world. Taxila was world famous for its science and medicine faculties. **Jivaka** performed here, for the first time in the world, the brain surgery, **Nagarjun** conceived of in a crude form the theory of relativity, which revolutionized the modern physics under the formulation of Albert Einstein [2]. Among the other great alumni of the university were **Chanakya** (*Kautilya/ Vishnugupt*), who wrote the world's finest work till today on political duties, statecrafts, economic policies, state intelligence system, administrative skills and military strategy, called the “Arth-Shastr”; **Panini**, who created a scientific treatise on language and grammar “Ashtadhyai”; **Charak**, the father of medicine, who authored “Charak Sahinta” ; **Vishnu Sharma**, who authored “Panch-Tantr”.

Nalanda university was another big learning center in India, which was established in the early 5th century CE in Bihar. It was also a residential university accommodating about 10,000 students and professors. Till the violent destruction by the ruthless looter Bakhtiyar Khilji in 1193 CE, the university was one of the largest universities in the Asia and Europe. **Asanga** and **Vasubandhu** were the famous professors of this university, and both religious and secular studies were taught in this university.

As per the accounts of the Chinese students of the university, such as **Xuanzang** and **Yi Jing**, who were some of many translators of Sanskrit texts into Chinese, Nalanda was a Buddhist foundation, as were Vikramshila and Odantapuri, where the central focus were the studies of Buddhist philosophy and practice. The point here to note is that the philosophy of Buddhism has potential to initiate the intellectual quarries with interest in analytical discipline. It is absolutely clear that this Buddhist foundation made much room for the pursuit of analytical and scientific subjects within the campus of Nalanda University [3]. Among the main subjects taught, and on which there was ongoing research, were medicine, astronomy, public heath, architecture, sculpture, religion, history, law and linguistics. In his journey account, the Chinese traveler **Hiuen-Tsang** has also mentioned similar things and specifically mentioned about cordial people, beautiful buildings and high hanging observatories in Nalanda.

Much is not known about the education of **Aryabhatta**, the great mathematician and astronomer, but some accounts described him as head of the Nalanda university. However, after the fall of Mauryan empire he might have taken refuge in the south-west coast of India. Heliocentric theory of gravitation was given by Aryabhatta at least 1000 yrs. predating Copernicus. Aryabhatta also worked on fractions, quadratic equations, sums of power series, equations of imaginary numbers (*square root of - 1*), etc. In his work he revealed that the planets and the moon do not have their own light, but reflected the light of the sun. The earth rotated on its axis causing day and night and also round the sun causing year. Aryabhatta calculated the radii of planetary orbits. His calculation of earth's diameter was very accurate. Incredibly he believed that the orbits of planets are ellipse and not circles. He correctly explained the causes of solar and lunar eclipses.

There were many other learning centers of comparatively lower standard, including Vikramshila near Bhagalpur (*specialize in logic, grammar and metaphysics*), Valabhi in Gujrat (*philosophy, language, science and economics were main subjects*) and Ujjain (*centre of mathematics and astronomy, etc.*), Banares

(*authority of sanskrit, religion and philosophy*), Odantapuri in Bihar, and Rajgir, Bodhgaya, Jalandhar, Avanti, Mathura and Kannauj etc…

Despite of the great centers of learning, there were eminent teachers and scholars in different kingdoms, towns and villages who contributed a lot in the field of mathematics, science, astronomy, art, culture and polity and others fields of knowledge. **Bhaskracharya** (*calculated the time of one year i.e. 365.258756484 days*), **Varahmihir, Brahmgupt, Mahavir, Sushrut, Dhanvantri, Patanjali, etc.** were not attached to any of the monasteries and they were institutions by themselves. Health scientist Sushrut conducted complicated surgeries like caesareans, cataract, artificial limbs, urinary stones and plastic surgery about 2600 yrs ago.

The education for common people, knowledge of elementary Indian philosophy, literature and elementary mathematics was entrusted to individual good teachers residing in big villages or temple towns. Those schools were supported by the donations, landlords, merchants and student fees. The way the Chinese Master of law was honored through out India shows that the Indians values knowledge above anything [2].

The religion was not a factor in seeking admission to these institutions. Sometimes the girls receive also educations, but not in the universities and there were no separate hostels for them. These selected females were either the daughters, wives or the widows of the preceptors. Although rare there are instances to show during the Vedic and post-Vedic period the students with mother's name alone (father's name wanting) were admitted to school.

The researchers agree that Indian invented the art of navigation around about 6000 yrs. It is corroborated that the word 'Navigation' is derived from the Sanskrit 'NavGatih' and the word 'Navy' from 'Nau'. The Decimal System of ten numerals, so-called Arabic numerals were invented by the Indians. This is to be endorsed here that the Arabians call them the 'Hindu-Numerals'. Albert Einstein knew the fact and praised Indians for their great invention; without which no worthwhile scientific discovery could have been made. In addition the Zero (*Brihadrnyaka Upanishad*), value of Pi (*Aryabhatta and Kerala School*), Algebra (*Arabians translation of Beej Ganit*), Geometry (*Gyamiti*), Trigonometry (*later version of Trikonmiti*) and Calculus (*Kerala School*) were invented by Indians. According to Indologist Leopold Van Schroeder and Voltaire, Pythagoras learnt geometry in the bank of Ganges (India) and his famous theorem was taken from 'Sulabh-Sutra'. 'Surya-Siddhanta' and the Indian books on algebra, trigonometry, and arithmetic contained the basic knowledge which would later propel Europe into

modern age.

The pre-Islamic Iran had acted as a transmitter of Indian knowledge to Egypt for two millennia and to Greek for one millennium. In the 1^{st} millennium BC, Iran was highly indianized as was an expansion of Indian culture and civilization. At the western fringe of it was Asia Minor (*modern Turkey*), which was a place of interaction between Greeks and Iranians. In the 6^{th} century BC, Iran expanded its boarders to include Assyria, Babylon, whole of Asia Minor and major parts of Greek. Egypt also fell to Iran soon after. Thus while Iran was engaged in expansion on its western boarders, its eastern part was in peace, continuously receiving Indian knowledge and traditions.

Later on, before Takshashila, Nalanda, Vikramshila, Odantpuri and other Indian learning centers were deserted and destroyed, much of Indian science (*especially mathematics, astrology, medicine and philosophy*) had already been translated into Arabic. Around the 8^{th} century transfer of knowledge from India to Arab started largely. Translation of Indian texts took place at a massive scale. The Arabs ruled over a vast area from Indus to Spain in the 8^{th} century, when there was continuous importing of knowledge from India. In this way, the Arabic version of Indian knowledge spread all over the world.

Apart from these, Indian wandering monks travelled the breadth and length around the holy land 'Bharat' so called India. They extensively added to the expansion of Indian knowledge in Asia and Europe. Moreover, Indian sea-traders do substantially contribute to the knowledge export from India. It was under this background that the Indian religions, philosophies and science travelled to the West to enlighten it in the ancient times. Certainly not by the sword and nor by narrow-mindedness and fanatism could India hold that place of honor and leadership amongst the various countries in the world.

India being a prosperous land in material, wealth and comforts, she continuously allured the foreign looters for her splendid possessions including mammoth treasures of diamonds and gold materials. Consequently, the foreign invasions did happen time and again and the huge amount of material wealth was looted, magnificent collection of literature was burnt and destroyed. The invaders smashed the Indian literature so extensively that the truthful rebuilding of pre-Islamic history of India remained a big question. This led to further demoralization of the scholars and the expansion of knowledge was greatly thwarted. Once the light of knowledge was gone, ignorance and social evils embraced the land from all sides.

In fact, whatever history of ancient India we have today has been shatter by

the invading Muslims rulers and thereafter fabricated by the British rule. It is an untold fact that whosoever is the ruler, the history is largely prejudiced by him. In such an environment the writing of "History" becomes the drafting of "His-Story". In the constructed history the old true facts (*although not much available*) were put under the rug and Indians were taught that they were uncivilized; physically and mentally poor. They (*Das, Dasyus*) deserved to be ruled by the foreigners (*Aryans*) and to be invaded. In such a background, an Invasion Theory was invented by the British rulers to divide and rule over India for ever. In the 'Aryan Invasion Theory' it was proclaimed that Aryan is a foreigner superior race and came from Central Asia to invade India.

However, several research findings [4] do not endorse any signature of invasion and cultural intrusion in the Indian subcontinent at least 6500 BCE. J.M. Kenoyer and many other archaeologists [5] have pointed out that current evidence does not support a pre- or proto-historic Indo Aryan Invasion in South Asia. Painted Gray Ware culture of the Indus Valley site represents indigenous cultural development and no infringement of the west [6]. This theory has no support neither in Indian literature and tradition, nor even in any of the south Indian (*so-called Dravidians*) literature, culture and traditions. Comically, the proponents of the theory have now changed their stand i.e. Invasion to Migration– they call this theory as the 'Aryan Migration Theory' [4, 7].

The main centre of Harappan Civilization is newly discovered Sarswati River of Vedic fame [8]. While Indus river has three dozon important Harappan sites, the Sarswati river has more than 500 sites. This river used to originate from the Himalayas and flow down to the Arabian sea. The rediscovery of the 1500 km-long bed of the Sarswati in nineteenth century has far-reaching repercussions on our understanding of the origing of Indian Civilization [9]. According to hydrological studies and satellite imagery data this river dried up completely around 1900 BCE. One can extrapolate the full-swing flowing time of the river to atleast 10000 BCE. It may be noted that in the Vedas this river is mentioned about forty times as a mighty river [10]. So one can assess the antiquity of Vedic culture going back to at least 10000 BCE. The Vedic culture, developed by the Aryans, flourished in the fertile banks of the Indus and Sarswati rivers. These people were elite, intellectual and socially developed.

The vast ocean of scriptures, like Bhagvad Gita, Mahabharat, Ramayan and Upanishads, greatly evidences an unimaginable expansion of human consciousness. There is no match for the knowledge that is poured in the vast ocean of literature till

today, and thousands of Nobel Prizes are less to laureate its writers. There is no reason that such an advanced intellect could ever miss to discover science. They were quite familiar with the laws and principles of nature. They constructed a scientific culture and their science was highly developed, and technologically they were advanced to the great heights [11]. The Rishis and Maharshis were basically the scientists, who used to perform experiments with nature using human body and mind as the instruments. They resolved the mysteries and puzzles of nature mostly with their intuitions, experiences, and error and trial methods.

It is not unknown that the culture thriving in India is the oldest in the world. Since the known history till today India is truly the most suitable model of the whole world in social set up and cultural harmony. Nowhere on the globe one can find the diversity and richness in religion, language and culture in a single country as in India.

Such a strength and quality in the fabric of this culture proves the scientific basis inherited in the roots of it. Till today, in ritual and daily routines people worship trees, plants, animals and rivers etc… In fact this does not promote superstitions rather pays concern to rich awareness of ecosystem. It is a natural principle, if you worship or respect or love something you do value for that, and try to preserve, conserve and protect that entity. This shows a perfect integration of science and spirituality the ancient people had.

It is therefore further added that the available ancient texts refer to a number of scientific inventions and discoveries. Gravitation has many references, like in: Prasnopanishad (3.8), Aitareya Upnishad (1.3.10), Sidhanta-Shiromani-Bhuvanakosha-6, 528 AD; Bhaskracharya (1114-1179): Gravity was known to Indians at least 400 yrs before the law of Newton. Earth is round is depicted in the idol of the 2nd incarnation of lord Vishnu (*Varah*) as lifting up a foot-ball shaped earth. Velocity of light is 4404 Yojan/Nimes is mentioned in Rik-Samhita-1.50.4, which exactly corroborates with presently known value: 3 lacs km/s. Solar, Earth, Moon Distances and their Diameters are given in Surya-sidhanth, Madhyamadhikarah, 59. Moon as the natural satellite of earth is mentioned in Rigveda 10.189.1; Taittriya Samhita 1.5.1.3,4. Planets and their rotation periods around sun are given in Aryabhateeyam-Kalakriyapada 3.17. 499 AD. The elliptical orbits of planets around sun are mentioned in Rig-Veda 1.164.2. Solar and Lunar Eclipses are calculated in Aryabhateeyam-Golapada 37. 499 AD; Surya Sidhanta and Jyotish Shashtra. Relativity of Space and Time is also revealed in Srimad Bhagvata Purana 9.3.27-36.

Ancient India had progressed and expanded her vision in all the spheres of life including sex and warfare. Despite of the destruction at massive scale by the

Muslim fanatics, there is a list of the scientific and other important literature that still exists in the libraries and personal possessions in India and abroad [12]. The Arab scholar and traveller Abu Rehan Alberuni also exposed the atrocities in his book [2]:
"Mahmud utterly ruined the prosperity of the country and performed those wonderful exploits by which the Hindus became like atoms of dust scattered in all direction and like a tale of old in the mouths of the people. These scattered remains cherish, of course, the most inveterate aversion towards all Moslems. This is the reason why Hindu sciences have retired far away from those parts of the country conquered by us and have fled to places our hand cannot yet reach."

Centuries and millennium have passed, and in the heat and dust of time true facts have gone into the oblivion. Unfortunately, the history distorted by the invaders and looters, who ruled this land for centuries, is still being taught to Indians. As a result, by and large people are sceptic talking about the untold history and true facts presented in the paper. A class of people doubts even the historicity of these facts, but a smaller cluster of people do agree that these facts are a matter of debate. However, there are some serious scholars who concur that these facts are not just to put under the rug, and a due justice must be given to them; fortunately the number is multiplying day by day.

Below are few of many quotes about India given by the **Researchers and Scholars:**

- Many of the advances in the sciences that we consider today to have been made in Europe were in fact made in India centuries ago.

  -Grand Duff, British Historian

- From the Vedas we learn a practical art of surgery, medicine, music, house building under which mechanized art is included. They are encyclopedia of every aspect of life, culture, religion, science, ethics, law, cosmology and meteorology.

  - William James, American Author

- Indians made many of the historical breakthroughs in Calculus, Geometry and Algebra much before Newton was born.

  -Dr Marcus Du Sautoy, University of Oxford

- Vedic Cosmology is the only one in which the time scales correspond to those of modern scientific cosmology. Vedic Cosmology is yet another ancient Vedic science which can be confirmed by modern scientific findings..… the cosmology of the Vedas closely parallels modern scientific

findings. **- Carl Sagan, British Cosmologist**

References

1. A.L. Basham, The Wonder That Was India, Part I, Rupa & Co, Bombay, 1999; S.A.A. Rizvi, The Wonder That Was India, Part II, Rupa & Co, Bombay, 1999.
2. Suhas Chatterjee, Indian Civilization and Culture, MD Publications Pvt. Ltd. India, 1998.
3. Amartya Sen, Keynote Address 98th Indian Science Congress, Chennai on 4th January, 2011.
4. David Frawley, Gods, Sages and Kings: Vedic Light on Ancient Civilization, Passage Press 1991, Salt lake City USA, and Banarsidass 1993, New Delhi; The Myth of Aryan Invasion of India, Voice of India 1995 ISBN 81-85199-59-0; with N.S. Rajaram Quebec: W.H. Press 1995; J.F. JarRige and R.H. Meadow, The Antecedents of civilization in the Indus Valley, Scientific American, August 1980.
5. **Earthquakes and civilizations of the Indus Valley: A challenge for archaeo-seismology,** Geological Society of America Special Papers 471, p119, 2010; J.M. Kenyor, The Indus Valley Tradition of Pakistan and Western India, Journal of Word Pretesting, 5: 331-385; B.E. Hemphill and A.I. Christensen, The Oxus Civilization as a link between East and West: A Non-Metric Analysis of Bronze Age Bactrian Biological Affinities, Paper read at the South Asia conference 3-5 Nov. 1994, Madison, Wisconsin, USA.
6. J. Shaffer, Indo Aryan Invasion: Cultural Myth and Archaeological Reality, Lukaes Ed., The People of South Asia, New York: Plenum 1984, p.88.
7. Romila Thaper, Archaeology and Language at the roots of Ancient India, Journal of Asiatic Society of Bombay, Vol. 64-66, 1989-91, p 259-260.
8. B.K. Bhadra, A.K. Gupta and J.R. Sharma, Sarswati Nadi in Haryana and Its linkage with the Vedic Sarswati River—Integrated Study based on Satellite Images and Ground based Informations, Journal of the Geological Society of India Vol. 73, No. 2, Feb 2009. P 273-288; B.B. Lal- Inaugural Address delivered at the International Seminar on Sarswati River and Hindu Civilization, held at India International Centre, New Delhi, Oct. 24-26, 2008; V.M.K. Puri and B.C. Verma, Glaciological and Geological Source of Vedic Sarswati in the Himalyas, Itihas Darpan IV (2), 1998; V.M.K. Puri, Origin and Course of Vedic Sarswati River in Himalaya—Its secular

desiccation episodes as deciphered from Palaeo-glaciation and Geomorphological signatures, Geological Survey of India Spec. 2001, Publ. No. 53.

9. Michel Danino, The Lost River: On the trail of the Sarswati, Penguin Books India, 2010.
10. Rig-Veda, verse 07.095.01.1-2.
11. Science & Technology in Indian Culture Ed. A. Rahman, 1984, NISTAD, New Delhi; High Technology in Ancient India, Vedic Science Vol. 7, No. 3, July-Sept. 2005.
12. Bhag C. Chauhan, Scientific Development in Ancient India, Vedic Science, Vol. 9, No. 4, Oct.-Dec. 2007; Lost Vedic Scientific Literature of Bharat, Vedic Science, Vol.7, No. 1, Jan.-March 2005.

Department of Physics & Astronomical Science,
School of Physical & Material Sciences,
Central University of Himachal Pradesh,
Dharamshala, Kangra -176215 INDIA.

कुल्लू की फसलें

मौलू राम ठाकुर

जिस प्रकार हिमाचल प्रदेश के ज़िला कुल्लू का इलाका भौगोलिक स्थिति में देश के अन्य भागों में अलग-थलग है, उसी प्रकार कृषि उत्पादन की दृष्टि से भी यहां कुछ भिन्नता है। देश के अन्य भागों की तरह कुल्लू भी कृषि प्रधान इलाका है। बल्कि यूं कहना चाहिए कि कुल्लू पूर्णतया कृषि पर आश्रित है। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहां नकदी फसलें इतनी अधिक उगती हैं जितनी अन्य फसलें। कुल्लू को विभिन्न प्राकृतिक उपहारों का सौभाग्य प्राप्त है। जहां एक ओर गेहूं की सराहनीय पैदावार होती है, वहीं दूसरी ओर आलू, लहसुन जैसी फसलें तथा सेब आदि फल की उपज भी खूब होती है। समय पर पर्याप्त वर्षा, उपजाऊ खेती और सिंचाई के पर्याप्त साधन कृषि के विकास के लिए प्रोत्साहन देते हैं। यहीं कारण है कि यहां के लोगों को अपनी खेती-बाड़ी पर पूरा गर्व हासिल है। यूं लगता है कि कृषकों की अपेक्षा पढ़े-लिखों की बेबसी और लाचारी के बारे में इन लोगों का अनुभव बहुत पुराना है, इसीलिए उनकी लोकोक्ति प्रसिद्ध हैं –

पढ़े-गुढ़े हुंदे लेबड़े ओठै।
मार कदाल नाज रे कोठै।।

(पढ़े-लिखे व्यक्तियों के, मायूसी के कारण, होंठ झुके होते हैं, जमीन का काम करने वालों के पास अनाज के कोठे (भण्डार) होते हैं।)

सचमुच ही इसमें कितनी सच्चाई है। बेरोजगारी के कारण पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिए अपने भाग्य को कोसने के सिवाए और चारा भी क्या है, तथा जो खेती बाड़ी का काम करते हैं उन्हें पढ़े-लिखों की तरह परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ता। उनका परिश्रम उन्हें फल दे देता है। कुल्लू के कृषि उत्पादन की विशेषता एक-दो अनाजों की भारी पैदावार में नहीं बल्कि उत्पन्न होने वाले अनाजों की भारी संख्या में है। संभवतः किसी एक इलाके में इस कदर फसलें एक साथ पैदा न होती हों जितनी कुल्लू में होती हैं। इसके कुछ कारण हैं। कुल्लू जिले की प्राकृतिक स्थिति इस तरह की है कि बजौरा, पलाच और आनी जैसी निचली घाटियों से पहाड़ों की चोटियों तक भूमि में फसलें उगाई जाती है, अर्थात् समुद्री तल से २००० फुट से लेकर १०,०००-१२,००० फुट की ऊंचाई तक काशत होती है। कहीं वर्षा बहुत कम और कहीं बहुत अधिक। कहीं बाढ़ और भारी वर्षा से बड़े-बड़े खेत हर वर्ष बह जाते हैं व कहीं वर्षा का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। इसीलिए आदिकाल से लेकर लोगों ने कुछ विभाजन कर रखे हैं –

बाल्ह : जिला का सबसे नीचे का क्षेत्र जो समुद्र तल से ४,००० फुट तक स्थित है और ऊझी क्षेत्र में व्यास नदी के साथ-साथ जहां पुराने समय से लेकर धान के रोपे हैं, यह सारा क्षेत्र बाल्ह

कहलाता है। सोमसी इस क्षेत्र का केन्द्र है। सिराज क्षेत्र में इसे निहुल भी कहा जाता है।

मझाट : शाब्दिक रूप से इसका अर्थ ''बीच का क्षेत्र'' है परन्तु ऐसा भाव बहुत कम देखने को मिलता है। यह वह क्षेत्र है जिसमें यद्यपि सिंचाई के साधन बहुत अच्छे नहीं है फिर भी ऐसे साधन पर्याप्त है। यह क्षेत्र समुद्री तल से ४,००० फुट और ७,००० फुट तक है।

गाहर अथवा गौहर : यह क्षेत्र सभी दिशा में बड़ा प्रसिद्ध है। मुख्यतः यह 7,000 फुट से ऊपर का क्षेत्र है जिसमें मूल रूप से कूटले शामिल हैं, जो यद्यपि २-३ वर्षों के बाद एक बार फसल देते हैं, परन्तु उस बार जो भी फसल देते हैं वह बहुत अच्छी कही जाती है। मझाट को छोड़कर शेष क्षेत्र के भेद और भाव को सभी जानते हैं। यही गाहर क्षेत्र है जहां थाच भी स्थित हैं जिसमें भेड़-बकरियों के लिए अच्छी चरागाहें पाई जाती हैं। यह ८,००० से ११,००० फुट की ऊंचाई तक फैले हैं।

निगाहर : हर वर्ष जुलाई में निचले क्षेत्रों में वर्षा बहुत अधिक होने लगती है, भेड़ों को और ऊंचे क्षेत्रों में ले जाते हैं जिन्हें निगाहर कहते हैं। रूपी में कनौर और इन्नर सिराज की शैंशर, शांघड़, तुंग और नौहांडा कोठियों की चरागाहें सबसे अच्छी चरागाहें हैं तथा उन में कुल्लू की भेड़-बकरियों के अलावा सुकेत के पुहालों की भेंड़े भी आ जाती हैं। जिनके नाम चरागाहों के कुछ क्षेत्र हैं।

फसलों की बीजाई और कटाई के समय के आधार पर कुल्लू की फसलों को भी पहाड़ों की अन्य क्षेत्रों की भान्ति दो भांगों में बांटा जाता है –

शाढ़ी या शौयर तथा नियाही

शाढ़ी की फसलों को राजस्व अभिलेखों में खरीफ की फसल कहते हैं। खरीफ की फसलें प्रायः मध्य वैशाख से मध्य आषाढ़ (मई-जून) में बीजी जाती हैं और मध्य भादों से मध्य कार्तिक (सितम्बर -अक्तूबर में) काटी जाती हैं। इसमें मुख्यतः धान, मक्की, कोदरा की फसलें उगाई जाती हैं।

नियाही की फसलें प्रायः मध्य आश्विन में मध्य मार्गशीर्ष (अक्तूबर-नवम्बर) तक बोयी जाती हैं और मध्य वैशाख से मध्य आषाढ़ तक (मई -जून) में काटी जाती है। इसमें राजस्व अभिलेखों में रबी की फसल कहा जाता है। इसमें मुख्यतः गेहूं, जौ की फसलें उगाई जाती हैं। दोनों खरीफ और रबी फसलों का सारांश में विवरण दिया जाना उचित रहेगा।

धान : कुल्लू जिला में आदिकाल से लेकर धान की उपज अच्छी रही है। बेगमी और बासमती चावल तो अधिक नहीं होते, परन्तु जाटू और माहुरी चावल पर्याप्त मात्रा में उगते हैं। रूहणी से सम्बन्धित जानकारी पहले ही दी जा चुकी है। उसे यहां दोहराना उचित नहीं है। धान की फसल की कटाई प्रायः अक्तूबर मास से लेकर की जाती है और काट करके उसे कुछ दिनों के लिए पौत्री (पत्री) लगाकर सूखने के लिए खेत में ही रख देते हैं कुछ खेतों में धान के साथ शोंख नामक घास भी उगता है जिसे साधारण व्यक्ति धान से अलग आसानी से नहीं कर सकता है। इसके सिरे पर समुद्री शंख जन्तु की तरह खोल सा होता है। इसे काटने के बाद पशुओं के चारे के लिए सुखाकर रख देते हैं। धान के पूले को पहले बड़े चपटे पत्थर पर पटकते हैं। धान अलग हो जाता है। शेष घास को **पराल** कहते हैं। धान का घास **पराल** बड़ा लाभदायक होता है। इसकी मूल रूप से **मंदरियां** तैयार की जाती हैं। मंदरियां चटाई का काम करती है। बिस्तर के नीचे भी इसका प्रयोग होता है। पराल की बरीक रस्सियां बनाई

जाती हैं और फिर इसकी **पूलें** तैयार की जाती है। जब तक वर्तमान चपलें नहीं थीं तब तक ये पूलें बहुत उपयोगी थीं। पूलें आधे पैरों के लिए हुआ करती हैं। लेकिन बर्फ पर चलने के लिए **रुचे-पलयांदरे** तैयार किए जाते हैं। रुचे तो बकरी की जटों के होते हैं, परन्तु पलयांदरे केवल पराल के बनते हैं। पलयांदरे इन रुचों को **कच** के रखते हैं। जहां धान के घास की इतनी अधिक कदर होती हो वहां धान के दानों की महत्त्वता निश्चित रूप से सराहनीय होगी ही। धान की फसल का अंदाजा लोग पराल से ही लगा देते हैं –

मूशा रा थोग बराली आगे।
धाना रा थोग पराली आगे।

''मुशारा'' का अर्थ चूहों का है। कुलुई में आकारान्त पुल्लिंग शब्द एक बचन और बहुवचन में समान रहते हैं। हिन्दी की तरह 'चूहे का'' (एक बचन) तथा चूहों का (बहुवचन) रुप अलग-अलग नहीं होता। ''थोग'' का अर्थ पत्ता, अंदाजा, अनुभव लगाना होता है। इकारान्त शब्दों के कारण प्रत्यय जुड़ने से कोई विकार नहीं आता। भाव यह है कि जहां बिल्लियां अधिक हों तो पता लग जाता है कि वहां चूहे अधिक होंगे। ऐसे ही जहां पराल घास अधिक हो वहां धान की अधिकता रहती है।

कोदरा कुल्लू के मुख्य अनाजों में से एक है, इसे अधिक वर्षा की आवश्यकता नहीं और न ही नर्म मिट्टी की जरूरत है। यही कारण है कि पहाड़ों के ऊपर पथरीली जमीन में, जहां अन्य फसलें पैदा नहीं होतीं, कोदरा सफलता से उगता है। यह गेहूं की किस्म का है, परन्तु इसके दाने अधिक बारीक और काले रंग के होते हैं। इस अनाज की बाली को स्थानीय भाषा में **डुण्डू** कहते हैं, इसके घास को ''कदराठा'' कहते हैं। घास को बड़े-बड़े ढेरों ''टूंहक'' में बड़े सुन्दर ढंग से रखा जाता है। कोदरे की मुख्य विशेषता यह है कि चाहे इसे सदियों तक रखा जाए इसमें कीड़े नहीं लगते हैं –

कोदरा सा सेभी नाजा रा राजा,
जेबै गर्म केरू तेबै ताजा।।

यह शूगर की बीमारी का लाजवाब इलाज है। वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद यह पता चला है कि कोदरा दिल की बीमारी और शूगर के मरीजों के लिए बहुत लाभदायक है। इसीलिए इसकी जरूरत अधिक पड़ रही है। कोदरे की सबसे अधिक जरूरत सूर के कारण होती है। सूर के बिना कुल्लू भर का काम नहीं चलता। विवाह-शादियों, घरपेशियों, गौभा-देने, बौकरे देने, देऊ-शधाणां आदि ऐसे आयोजन हैं जिनमें आठ-दस भार कोदरे की सूर लगानी पड़ती है। एक भार में कम-कम 20 किलोग्राम अन्न आता है। गांवों में प्राचीन समय से लेकर बड़ी-बड़ी भांदलें (घड़े) पड़ी है। विभिन्न घरों से इन भांदलों को इकट्ठा किया जाता है। बड़ी भांदल में एक भार सूर लगती है। आयोजन के दिन सबसे पहले सूर अपने गृह देवता, ग्राम देवता को चढ़ाई जाती है। यही नहीं किसान-जमीनदार को कोई भी बड़ा कार्य सूर के बिना पूरा नहीं होता। जुआर (सहकार) का काम तभी चलता है जब सूर होती है। जुआरुओं को दिन का भोजन मिले या न मिले, परन्तु रात की सूर अवश्य होनी चाहिए। अनेक सूर पीने वाले जुआरू दूसरे दिन भी उसी घर में सूर पीने बैठ जाते हैं।

सूर लगाने/बनाने की विधि : सूर लगाना बनाना सहज कार्य नहीं है और न ही हर कोई सूर लगा सकता है। हर एक गांव में दो-चार विशेषज्ञ हैं, जिन से परामर्श लेकर सूर लगाने का काम करते

हैं। डेढ़-दो महीने पहले उनके पास जाना होता है। वे पूछते हैं - कितने जुआरू हैं, कितने दिन पीएंगे। क्या और नशा भी है (शराब, चाकटी आदि) विवाह आदि बड़े आयोजनों के लिए वे कहते हैं इतने भार कोदरा पीस कर लाओ। आयोजन से डेढ़-दो महीने पहले विशेषज्ञ आ जाता है और उस सारे आटे को गूंध करके उसको भांदल या बड़े-बड़े मटकों में भर करके रख देगा इसे चेहुर भरना कहते हैं। चेहुर से अभिप्राय है 'कच्चा ही आटा' गून्थ कर रख दिया है। १५ से २० दिनों के बाद जब आटे से बू आने लगती है, वह पुनः एक दिन आएगा और चेहुर के आटे की एक बड़े तवे पर रोटी को केवल तवे पर ही पकाएगा। चूल्हें में आंच देने की आवश्यकता नहीं होती। फिर वह उन रोटियों के छोटे-छोटे टुकड़े बनवाएगा। जब वे टुकड़े कुछ ठंडे हो जाएंगे तो उन टुकड़ों को भांदलों में डाल देगा, पानी भी साथ भर देता है। इसके बाद प्रत्येक घड़े में ढेली डालता है। वह ढेली को सूंघ कर ही बता सकता है कि ढेली कितनी सख्त अथवा अच्छी है। वैसे एक अनजान भी बता सकता है कि ढेली कितनी प्रभावशाली तथा अच्छी तैयार हुई है। ६४ प्रकार की जड़ी-बूटियों में से एक का नाम डोरी है जिसे साधारण व्यक्ति भी जानता है। इसकी विशेषता यह है कि कई क्विंटल जौ की ढेली बनी हो, बराबर मात्रा में उपयुक्त की हो तो हर प्रत्येक बीम के बीचों-बीच चौड़ाई की तरफ से लाल धारी सी बनी दिखाई देगी। यह जितनी लाल और जितनी सुदृढ़ होगी उतनी ही ढेली प्रभावशाली होगी विशेषज्ञ प्रायः एक भार आटे के लिए सेर ढेली, आजकल प्रायः १६ किलोग्राम कोदरे के आटे के लिए किलोग्राम ढेली के हिसाब से ढेली लेगा। उसे उखल मूसल से पीसेगा और प्रत्येक भांदल में छालकर उसे हाथों से खूब मलेगा। भांदल को मजबूत ढक्कन लगाएगा। चन्द दिनों के बाद सूर पीने के योग्य हो जाएगी।

काठू कोदरे की तरह ही काठू भी देखने मे काला और इसके दाने लगभग गेहूं बड़े और मक्की के आकार के होते हैं। पहाड़ों की ८,०००-१०,००० फुट की ऊंचाई पर जहां और फसलें नहीं उगती काठू की खूब पैदावार होती है। ऐसे ऊंचे स्थानों के खेतों को ''कुटला'' कहा जाता है। राजस्व अभिलेखों में इसे ''बाथल चहारम'' का नाम दिया गया है। काठू के दाने को पीस कर आटे की रोटी बनाई जाती है, और इसके पत्तों (स्थानीय भाषा में पौचे) की बड़ी स्वादिष्ट सब्जी बनती है, जिसे ''काठू री भाजी'' कहते हैं। कोदरे की तरह काठू भी कभी कीड़े आदि से नष्ट नहीं होता। इसमें बल्कि एक और विशेषता है, यह जितना ज्यादा पुराना होता जाता है, खाने के लिए अधिक स्वादिष्ट होता जाता है। किसान काठू को बड़े-बड़े बक्सों, दार्ठों में आड़े समय के लिए सुरक्षित रखते हैं।

भरेसा : काठू की ही एक दूसरी किस्म भरेसा है, परन्तु इसकी पैदावार काठू के मुकाबले में कम होने के कारण इसे कम बीजा जाता है। इसका दाना काठू के दाने से अधिक नोकदार होता है और इसके दाने और फूल का रंग सफेद होता है।

घांगड़ी : कुल्लू के प्रसिद्ध अनाजों में एक घांगड़ी है। शकल-सूरत से यह बिल्कुल काठू से मिलती है, परन्तु यह धान की श्रेणी का अनाज है। इसे उखल-मूसल में कूट कर धान की तरह पकाया जाता है। इसके पकवान को 'घांगड़ी रा भौत' कहते हैं। इसके भूसे को ''घड़ेन'' और छिलके को ''तूश'' कहते हैं। इसका छिलका धान के छिलके से मोटा पर अधिक नर्म होता है। यही कारण है कि जहां धान का छिलका किसी काम नहीं आता, वहां घांगड़ी के छिलके को सुखाकर मक्की के साथ

पीसने से बड़ा स्वादिष्ट होता है। घांगड़ी के पत्तों की सब्जी भी बड़ी स्वादिष्ट होती है। पत्ते चौड़े होने के कारण इन पत्तों को लोग इकट्ठा करके सुखाकर सर्दी के लिए रखते हैं। सर्दी में जब अन्य सब्जी नहीं होती, इन सूखे पत्तों की सब्जी बड़ी स्वादिष्ट होती है। अतएव, यह एक ऐसा अनाज है जिसके दाने, पत्ते और छिलके सब खाने के काम आते हैं। केवल काठू के साथ इसका छिलका खाने को ठीक नहीं होता –

नी बनदा काठू - तूश,
नी बनदी शोशू - नूश।

जैसे सास और बहू की तबीयत आपस में नहीं मिलती, उसी तरह काठू और तूश आपस में नहीं मिलते।

सरयारा : कुल्लू के अनाजों में से सरयारा प्रसिद्ध है। यह न केवल बीथू और काठू से अधिक काश्त होता है, बल्कि यह कुल्लू के मुख्य अनाजों में से एक है। इसकी उपज कई बार इतनी अच्छी होती है कि एक बाली में किलों भर सरयारा निकलता है। इसकी बाली भी बहुत बड़ी होती है और कई बार भारी होने से झुक कर जमीन तक लग जाती है। इसकी एक किस्म दो महीनों में पक कर तैयार हो जाती है। इसे ''शौठू सरयारा'' (६० दिनों में पकने वाला) कहते हैं। इसका दाना आकार में बिल्कुल पोस्त (खश-खश) की तरह होता है। परन्तु यह डोडी में नहीं बल्कि बाली में होता है, जिसे 'सील' कहते हैं। इसे पीस और उबाल कर दो तरह से खाया जाता है। पीस कर यह बहुत कम प्रयोग में आता है और न ही एक दूसरे अनाजों के मिश्रण के साथ पीसा जा सकता है। पीसने पर इसकी रोटी नहीं बनती बल्कि आटा गूंध कर मोटे - मोटे पेड़ों के रूप में पानी में उबाल कर पकाया जाता है, इन्हें ''सीडू'' या ''सिड्डू'' कहते हैं। काठू और कोदरे की तरह सरयारा की भी यह विशेषता है कि यह कभी खराब नहीं होता, न कोई कीड़ा इसे लगता है। कई वर्षों तक इसे रखा जाए इसमें कोई हानि नहीं होती है। जिन घरों में काठू, कोदरा और सरयारा हो उनको लोग बड़े सुखी समझते हैं और इन्हें आड़े वक्तों के लिए जमा रखते हैं। सरयारे को व्रत के दिन भी खाते हैं जब दूसरे अन्न से परहेज किया जाता है। इसके दानों को भून कर स्वादिष्ट ''धाणा'' बनती है। ''धाणा'' का अर्थ ''भूने हुए दाने'' हैं। यह स्त्रीलिंग शब्द है और बहुवचन के रूप में प्रयुक्त होता है। धाणा गेहूं, मक्की और भांग की होती है। कुछ भांग के दाने डालकर लोग सर्दी के समय बड़े चाव से खाते हैं। कुल्लू में चाय का रिवाज नहीं था। इसकी जगह इनका अपना जल-पान है जो पेय और खाद्य पदार्थ दोनों का काम देता है। इसे ''फेंबड़ा'' कहते हैं। सरयारा का मुख्य उपयोग तो इसी में होता है। यह खीर की तरह का भोजन होता है परन्तु इसमें दूध, चावल और चीनी का नहीं डाले जाते बल्कि दर्जन भर अनाज और सब्जियां डाली जाती है। सरयारा को हाथ की चक्की जिसे 'गुरठू'' कहते हैं, में मोटा-मोटा पीसा जाता है, फिर एक बड़े बर्तन में डाल कर साथ मक्की के दाने, गेहूं के दाने, सोयाबीन (भौल्ठ), साग, कद्दू, बीथू, कोल्थ, छाछ डालकर देर तक उबाला जाता है। अधिक उबालने पर इसकी पेस्टरी सी बन जाती है, जिसे लोग बड़े चाव से खाते हैं।

भौल्ट : जिस सोयाबीन की विशेषज्ञों ने हाल ही में निरीक्षण के बाद भारी प्रशंसा की है, तथा

जिसके उपयोग को अब बहुत महत्त्व दिया जा रहा है, वह सोयाबीन कुल्लू में सदियों से भौल्ठ के नाम पर काश्त होता है। अन्तर केवल इतना है कि सोयाबीन के बढ़िया और मोटे बीज हैं और भौल्ठ के कुछ छोटे। इसे लोग गेहूं और मक्की के साथ पीस कर भी खाते हैं। 'फैंबड़े' में उबाल कर भी और यूं ही दानों को भून कर चनों की तरह भी खाया जाता है। लगघाटी में इसका आदिकाल से बहुत उपयोग किया जाता रहा है। यह पौष्टिक आहार के रूप में बहुत खाया जाता रहा है। सर्दी के दिनों में जब लोग भेड़-बकरियों के लिए पतियां लाने या लकड़ी लाने जंगलों में जाते हैं तो भौल्ठ की धाणा जेब में डालकर खाते रहते थे। इसकी शब्द व्युत्पति ही इसके बलवर्धक होने की परिचयिका है-बल- पुष्ट> भौल्ठ। इसे बीजने के लिए अलग खेत की आवश्यकता नहीं है। इसे कोदरे के बीच-बीच बोया जाता है जहां इसकी अच्छी फसल होती है।

चीणी : धान की जाति का अनाज है और उसी के साथ बोया जाता है, परन्तु इसके लिए धान की तरह पानी की जरूरत नहीं पड़ती। शुष्क मौसम में भी इसकी फसल सफल रहती है। यह छोटी चिड़ियों का मन-भाता खाना है। चिड़ियों से बचाने के लिए खेतों में पुराने कपड़ों के चीथेड़े लकड़ों में लटकाए जाते हैं। इसे ''डराऊनी'' कहते हैं। इसके भूसे को 'चनेठा' कहते हैं। इसलिए इसको कूटने में समय अधिक लगता है।

काऊणी : चीणी की एक किस्म काऊणी है। परन्तु उसे एक खेत में कम ही बोते हैं। प्रायः इसे धान और कोदरा के खेतों में दूर-दूर बीज डालकर बोया जाता है। धान और कोदरे के पौधे से इसका पौधा अधिक ऊंचा होता है। दूर-दूर होने के कारण निचले पौधों को कोई हानि नहीं पहुंचती, न ही इसके पते अधिक होते हैं, जिससे साथ के पौधों को रुकावट नहीं पहुंचती। ''सील'' बहुत बड़ा होने के कारण पैदावार भी अच्छी होती है। इसी प्रकार एक खेत में दो-दो फसलें पकती हैं। इसका दाना चीणी के बराबर होता है परन्तु इसे कूटने में धान और चीणी से कम समय लगता है।

मकई : मकई नाम से जिस अन्न का संकेत हमें मिलता है, वह वास्तव में मक्का, मक्की, मकई, छली, भुट्टा, कुकड़ी आदि अनेक नामों से जाना जाता है। जितने ज्यादा इसके नाम उतने ही अधिक इसके काम भी है। इसके दाने पीस कर हम हर रोज खाते रहे हैं। छली री रोटी होर छाह (छाछ) हम खूब खाते आए हैं। आटे के ही सीडू भी बनाते हैं, विशेष रूप से जब कद्दू को पकाने डालते हैं तो उसके साथ सीडू भी डाल देते हैं और दोनों को एक साथ ही खाया भी जाता है। अभी छली पकी भी नहीं होती है, उसके आधे-कच्चे भुटटों से सड़कों पर बैठ कर अंगीठी वाले खूब पैसा कमाते हैं। भुट्टे के बाहर जो 'पोचला' (पते से) होता है वह कच्चे से लेकर सूखने तक पशुओं का मन पंसद खाना है। इसे उतारने पर जो गोल सी ''गुली'' बचती है वह सारी सर्दी के मौसम में जलाने के काम आती है। छली के मूल घास को छलीयाठा कहते हैं, अर्थात् छली + काष्ठक = छलीयाठा। मोटे डंठल को कुतर-कुतर करके पशुओं को खिलाया जाता है। छलीयाठा से शोर खूब सुनाई देता है। अतः उसकी लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं –

मियां री तरेड़,
कुकड़ी री छेड़।

इसी तरह

मियां रा बियाह,
कुकड़ीया रा घाह।
ढोला रा ढम-ढमाह
रहना री ना कोई बशाह।

यह प्रायः मई या जून के महीनों में बोयी जाती है। परन्तु तीन बार इसे जमीदार बीजते हैं। प्रथमतः **बास्ती** – गत वर्ष की रवी फसल में से खाली छोड़ा खेत जिसमें मई के आरम्भ में ही ऐसी मकई बीजी जाती है जो अधिक समय पकने में लेती है। विशेष रूप में कृषि विभाग द्वारा प्रसारित अच्छी मकई। दूसरी **ज्वाली**–अर्थात् जो इसी वर्ष जौ की फसल काटने पर बीजी जाती है। यह आदिकाल से लेकर क्रम बना है। जौ के बाद मकई तथा मकई के बाद पुनः जौ। वैसे जौ के साथ आदिकाल से ही छली क्रम बनाती आई है। अर्थात् जौ काट कर जमीनदार उसी खेत में छली बीज देता है तथा मकई के पक जाने पर उसी खेत में जौ बो देते हैं। इस तरह एक ही खेत में जौ के बाद मकई और मकई के बाद जौ। आज कल मकई की कई तरह की किसमें उग आई हैं, जैसे शौठू छोली जो केवल साठ दिनों में ही पक जाती है। यद्यपि आज कल शौठू छौली तो कम ही बोई जाती है। तथापि साठ दिनों में पकने वाली छली प्रायः मिल जाती है। तीसरी किसम की छली **घुआली** छली है। घुआली छली मूल रूप में गेहूं की छली है अर्थात् गेहूं को काट लेने पर जो मकई बोई जाती है यही घुआली छौली या छली कहलाती है।

इलाका लग के नाले में छली की पैदावार सर्वाधिक हो जाती है। यहां आदिकाल से ही छली की अधिक उपज होने के कारण सौदागर आते हैं और पहले समय में तो कुल्लू शहर तक पीठ पर ले जाते थे। आज कल ट्रक पहुंच रहे हैं। इन ट्रकों में छली सीधे ब्रीउरी पहुंच जाती है और वहां से वही छली बीयर बन कर फिर हमें पीने के लिए बोतलों में पहुंच जाती है। छली की फसल यद्यपि काफी परिश्रम मांगती है, परन्तु मोटा दाना, मोटा पौधा और मोटा कुकड़ू या भुट्टा और बड़ा मोटा घास होने के कारण मेहनत अधिक थकाने वाली नहीं होती। कणक (गेहूं), कपास और छली से सम्बन्धित एक कहावत बहुत लोकप्रिय है –

कणक कमांदी संगणी, डांगों- डांग कपाह।
बुकल मार लेफा री छली मौंझे लांगी जा।।

कणक का बीज और पौधा साथ-साथ होने चाहिए, और कपास की खेती में इतने दूर होने चाहिए कि आदमी डांग-सोठा लेकर भी फसल के बीच से गुजर आए। मकई के पौधे इतनी दूर-दूर उगने चाहिए कि मानव रज़ाई या कंबल को अपने ऊपर लपेट कर मकई के खेत के बीच से निकल जाए।

क्योंकि छली के बीज को भी लोग अन्य अनाज के बीज की तरह प्रायः मुट्ठी में भर कर फेंकते हैं, इसलिए प्रत्येक छली के खेत को ज़ंदालने की जरूरत पड़ती है। रूहणी लगाते हुए हम दंदाल के महत्व को देख चुके हैं। दंदाल के शौले या (दान्त) छोटे और निकट-निकट होते हैं, परन्तु जंदाल के शौले अधिक दूर और लंबे होते हैं। ये शौले लकड़ी के बनाए जाते हैं, इसलिए इन्हें किसान तराश कर

अधिक तेज करते हैं। कुल्लू क्षेत्र में छली के ईलावा कोदरे की फसल को भी जंदालने की आवश्यकता पड़ती है। मकई के जंदालने के लगभग एक सप्ताह के बाद उसकी निड़ाई का काम आता है। छली के सम्बन्ध में सबसे बड़ा परिश्रम का काम छौली चुआड़ने अर्थात् भुट्टों से पतों को उतारने का कार्य होता है। कई दिनों तक खेतों में छली तोड़ने और घर पर पहुंचाने से भुट्टों का ढेर लग जाता है और जब तक उनकी सफाई नहीं होती मक्की का काम अधूरा रहता है। छली चुआड़ने का यह काम कष्ट भी देता है। लगातर दो-तीन पते उतारने से अंगूठों में सख्त दर्द होता है। इसके लिए सूए की सहायता लेनी पड़ती है।

पिछले दिनों मुझे एक गांव में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। अंधेरा हो रहा था। एक घर में रात गुजारने के लिए गया तो बरामदे में मक्की के भुट्टों का बड़ा ढेर लगा हुआ था। ढेर एक तरफ घर की दीवार के साथ खड़ा था। शेष तीनों ओर बच्चे, जवान, बूढ़े, चौकड़ी मारकर बैठे भुट्टों के पते उतार रहे थे और बीच में घर का वृद्ध स्वामी कहानी सुना रहा था। दोहरा लाभ बच्चे और बूढे कथा का आनन्द ले रहे थे और वृद्ध स्वामी का मक्की के भुटटों की सफाई का काम खूब गति से चल रहा था।

यही हमारी ग्रामीण संस्कृति और ग्रामीण सभ्यता की विशिष्टता है। मनोरंजन की बात हो तो भी काम करते हुए। रात देर तक कथा का दौर चलता है। मजाल है कि बच्चों को नींद आए। कथा पर कथा सुनते जाते हैं और उधर वैसे ही पते उतारने के बाद नंगे भुट्टों का लाल-पीला ढेर भी बनाता जाता है। यहीं से कथा-कहानियां सुनने-सुनाने का समय आरम्भ होता है।

छली चुआड़ने के बाद जब भुट्टे साफ सुथरे होकर छतों पर महीना भर के लिए सूखने हेतु बिछाए जाते हैं तो सारी छतें स्वर्णिम दिखाई देती हैं।

ओगल : कुछ लोग भरेसा को ही ओगल समझते हैं परन्तु दोनों भिन्न प्रकार के अन्न है। **भरेसा** निचले क्षेत्रों में भी उगता है, परन्तु ओगल का क्षेत्र अधिकतः पहाड़ों के ऊपर है। मूल में ओगल थाच या कुटलों में अधिक होता है। जब अभी गेहूं कुटलों में पैदा नहीं होता था, तो वहां ओगल बहुतायत में बोया जाता रहा है। यह ठीक है कि भरेसा घागड़ी के साथ-साथ बोया और काटा जाता है, परन्तु जहां घांगड़ी चावल के परिवार में होने के कारण भात के रूप में पका कर खाई जाती है वहीं ओगल आटा के रूप में खाया जाता है।

तंबाकू : कुल्लू क्षेत्र में तम्बाकू कभी शौयर और नियाह दोनों ऋतुओं में बोया जाता था। इसे धान की तरह पनीरी रूप में उगाया जाता है और फिर बाद में पनीरी को एक जगह से उखाड़ कर दूसरे बड़े खेत में उगाया जाता है। बड़े-बड़े पत्तों को अलग से मोटा-मोटा काट कर उनको सुखा दिया जाता है जो अच्छा तंबाकू कहलाता है। परन्तु इसके मोटे डंठल भी बारीक-बारीक कुतर और काट कर सुखा लेते हैं। तंबाकू का सेवन अब बहुत कम हो गया है। कारण बीड़ी ने इसकी जगह ले ली है। बीड़ी को जेब में डालकर जहां मरजी वहीं जाओ और जब चाहो जेब से निकाल ली, सुलगा दी और नशा पूरा कर लो। लेकिन तंबाकू का मजा तो हुक्का में आराम के साथ बैठकर पीने में ही है। उसका सेवन उतना नुकसानदेह भी नहीं है, क्योंकि तंबाकू पहले ठूठी में जलेगा, फिर पहली नली से गुज़रता हुआ नीचे हुक्का के पेंदल अथवा नरेल में रखे पानी में से गुजरेगा फिर दूसरी नली में से चलता हुआ मुंह में

आएगा। इस तरह यह प्रायः उतना हानिकारक नहीं होता है। पुराने समय में तंबाकू पीना समाज में उठने-बैठने की एक परम्परा थी। एक जगह पर बैठने का बहाना था, यदि कोई समाज विरोधी काम करे तो उसके साथ हुक्का पानी बंद कर दिया करते थे। बड़े-बड़े मेलों में जहां ढीली नाटी लगी हो, तो एक आदमी पंक्ति से बाहर बैठ कर हुक्का साथ में लिए उसे पीता भी रहता था और दूसरे को भी पिलाता रहता था। ये सारी मौज-मस्तियां अब देखने को नहीं मिलती। बीड़ी, सिग्रेट की डब्बियों पर आप लाल सियाही 'जहर है' की चेतावनी लिख दो पीने वाले जहर भी पी जाते हैं। पुराने समय में तंबाकू हमारे पहाड़ों में रास्ते की दूरी मापने का मील-पत्थर हुआ करता था। कहते थे ''अभी तो चार-तम्बाकू या छह तम्बाकू रास्ता शेष है।''

भांग : भांग आदिकाल से लेकर कुल्लू के जमीनदारों और किसानों के लिए एक-मात्र कैश क्रॉप अर्थात् कीमती फसल हुआ करती थी। दशहरे के दिनों में कुल्लू की स्त्रियां पीठ पर रस्सियों का बोझ लाकर, दिनभर पैसे बटोर कर खुशी-खुशी घर लौटती थीं। १९१७ में प्रकाशित कांगड़ा जिला के गजेटियार भाग दो कुल्लू और सिराज के पृष्ट ९१ पर लिखा है – ''जलोड़ी पर्वत शिखर के दोनों ओर की ढलानों में स्थित गांवों में भांग बहुत बड़े क्षेत्र में बोई जाती है। जहां बर्फ की अधिकता चरस निकालने के लिए हानिकारक परन्तु उच्च कोटि के रेशों के निकालने के लिए लाभकारी होती है।

इसे बीजने के लिए बड़े-बड़े खेतों या अच्छी जमीन के टुकड़ों की आवश्यकता भी नहीं होती। यह गांव के बीच में ही या उनके निकट खाली जगह पर अथवा ऊपर जंगलों में स्थित थाचों में बोई जाती है जहां भेड़-बकरियां रहा करती है। इसकी एक एकड़ में पांच से दस मन तक रेशे की उपज होती है, जो उन गांवों के लोगों को जहां भाग की पैदावार नहीं होती एक रुपये की 8 से 16 सेर (किलो) तक बिक जाती थी। परन्तु अधिकतर शेल्ह (रेशा) उन गांवों में बिकता है जहां इनकी रस्सियां और पूलें तैयार होती हैं जो मुख्यतः स्त्रियों द्वारा बनाई जाती है। एक सेर पक्का रेशे से पूला के चार जोड़े या 30 फुट लंबी तीन रस्सियां बनती है। उन दिनों रामपुर बुशहर या सुलतानपुर में चार आने को एक जोड़ा पूलों का मिल जाता था।''

किसी समय भांग कुल्लू क्षेत्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपयोगी अन्न होता था। आज भांग के कारण कुल्लू देश-विदेश में बदनाम है। इसकी उपयोगिता आज भी कम नहीं हुई है। इसके रेशे से जो रस्सियां बनती हैं उनका कहीं मुकाबला नहीं। हालांकि उस समय भी भांग के रेशे, जिन्हें स्थानीय भाषा में शेल्ह कहा जाता है, सबसे अधिक पैसों में बिकता था। भांग को नवम्बर महीने में काट कर भांग के दानों को साफ करके रख देते हैं और सर्दी के दिनों में दो तरह से इसका उपयोग किया जाता है। पहली स्थिति में इसे अखरोट आदि के साथ पीस कर चटनी के रूप में खाया जाता है। दूसरा इसे सरयारा गेहूं, भौल्ठ के दानों के साथ भून कर खाया जाता है। इसे धाणा कहते हैं। भूने हुए दानों को जब चबाकर खाते हैं तो यही दाने धाणा बन जाते हैं। धाणा स्त्रीलिंग बहुवचन शब्द है और इसे हर समय इसी रूप में प्रयोग में लाया जाता है। हमारे बुजुर्गों ने आज तक भांग के दानों को चटनी और धाणा के रूप में ही प्रयोग में लाया है। उन्हें यह कभी सपनों में भी ज्ञान नहीं था कि भांग को चरस के रूप में भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

प्रमुख रूप से तो इसकी रस्सियां बनती हैं तथा कुल्लू के लोग आज भी सरकार से अनुरोध कर रहे हैं कि इसके बदले में हमें या तो सहायता अनुदान दिया जाए या हरजाना दिया जाए या दूसरी प्रकार की रस्सियां हमें दी जाए। जिस समय हमारे यहां कोई बछड़ा पैदा हो जाता है तो उसी समय हमें उसे बांधने के लिए रस्सी की आवश्यकता पड़ती है। हर परिवार के पास एक दर्जन से अधिक पशु हर समय रहते हैं। बैल या गाय के गले में लगी रस्सी दो-तीन महीने से अधिक देर तक नहीं टिकती। कुल्लू भर में सारा काम लकड़ी से लेकर अनाज और घास तक पीठ पर लाना पड़ता है और वह सारा काम बोझ में बांध कर लाना पड़ता है। सर्दी के दिनों में जब बाहर बर्फ पड़ा होता है तो खेत-खलियान का कोई काम नहीं होता। हमारी स्त्रियां दो-ढाई सौ रस्सियां बना देती थी और दशहरा के दिनों में पीठ पर पूरा बोझ लादकर कुल्लू ले जाती थीं तो उनकी रस्यिां हाथों-हाथ बिकती थीं। जो रस्सियां तब बनती थीं, उतनी ही इन्हें आज कल स्वयं खरीदनी पड़ती हैं।

रस्सी बनाना भी एक कला है। जो जितना अच्छा कलाकार होगा उतनी ही सुन्दर और आकर्षक उसकी कलाकृति भी होती है। रस्सी बनाना कई चरणों का काम है। नवम्बर के महीने में स्त्रियां पहाड़ों पर जा कर खुदरौ अर्थात् स्वयं उपजी भांगा को इकट्ठा करके पीठ पर उठाकर घर पहुंचाती हैं। ऐसी स्वतः उपजी भांग दो तरह की होती है – पहली किस्म की भांग वही होती है जो थाचों में उपजी होती है। थाच पहाड़ों पर वह जगह होती है, जहां हर साल भेड़ें बैठा करती हैं। वहां भेड़ की मीगंणों की जो ढेरों भरी खाद होती हैं उसे **बीउन** खाद कहते हैं। लोग इस बीउन खाद को भी वोरियों में भर कर लाते हैं। बीउन के साथ-साथ दूर तक यह दूसरी प्रकार की स्वतः उपजी भांग उग जाती है। इसमें और बोये हुए बीजों की भांग और शेल्ह में कोई भिन्नता नहीं होती। परन्तु ऐसे ही नालों-धारों में एक अन्य किस्म का शेल्ह भी प्राप्त होता है। उसे **कायली शेल्ह** कहते हैं। यह कायली कुशक जब सूख जाती है तो कुशक के लम्बे और मोटे डण्ठलों में शेल्ह होता है। यह शेल्ह कमजोर और नरम होता है और इसका लाल रंग दूर से ही बता देता है कि यह असल शेल्ह न होकर कायली शेल्ह की रस्सी है। शेल्ह इकट्ठा करने के काम के बाद दूसरा काम उसका चुआड़ने से सम्बन्धित है, इसके लिए पहले काम से भी अधिक दिन लगते हैं। इसका एक-एक रेशा निकलना पड़ता है। तब उसके कई ढेर लगते हैं। तीसरे चरण में इस शेल्ह को बाटने की जरूरत होती है। बाट देते समय विशेष ध्यान इस दिशा की ओर दिया जाता है कि शेल्ह कहीं से मोटा या कहीं से पतला न रहे। पहले ही डोर को जेउड़ी कहते हैं। जिसकी जेउड़ी साफ सुथरी और सम-रूपी हो उसकी रस्सी भी मजबूत रहती है। चाहे हाथ कितना भी जोर वाला हो उस जेउड़ी को कसने/किडना की जरूरत बनी रहती है। चौथे चरण में इसे साफ करने तथा कसने के लिए एक कंड़ेरन की आवश्यकता होती है। यह लकड़ी की होती है इसके सिरे पर हुक जैसा बना होता है। यह बनाया नहीं जाता, लकड़ी इस तरह की ढूंढनी पड़ती है। इसकी नोक पर जेउड़ी के सिरे को रख कर उसे पलटा दिया जाता है, जिससे उसकी लपेटें अधिक कस जाती है। पांचवे और अन्तिम चरण में इस प्रकार कसी हुए जेउड़ी को अपनी फैलाई हुई टांगों के दोनों पैरों को साथ-साथ रखकर उनके सिरे पर प्रायः बीस फेरे के बराबर एक रस्सी की लंबाई मान कर उतनी ही लंबी जेउड़ी की पहले दो और फिर तीसरी जेउड़ी को मिलाने से मज़बूत रस्सी बन जाती है।

सारे लंबे हिऊंद के समय में इस प्रकार जितनी रस्सियां बन जाती हैं, इन्हीं रस्सियों को प्रत्येक स्त्री पीठ पर बोझ बना कर दशहरा के दिनों में कुल्लू ले आया करती थीं और यहां उसकी रस्सियां खूब बिका करती है।

बीथू : मूल रूप में बीथू का बथुआ जैसा पौधा होता है। इसके दाने सरयारा के दाने जैसे होते हैं तथा पौधा छोटा होता है। इसके पतों की सब्जी बहुत अच्छी होती है। विशेष रूप से जब बच्चे सरदी-जुकाम से ग्रस्त हों तो यह पतों की सब्जी औषधि का काम देती है। इससे जुकाम, बुखार आदि उतर जाता है।

टाक : सरयारा की जाति का एक और अनाज टाक है। सरयारे के झूंफ नीचे की ओर झुके होते हैं और झूंफ बड़ा हाता है, परन्तु टाक का झूंफ छोटा होता है और खड़ा रहता है। टाक के झूंफ का रंग गहरा लाल होता है। **झूंफ** का अर्थ झुमका है। झुमका सोने या चांदी का सुनार द्वारा बनाया गहना है, परन्तु झूंफ सरयारे की जाति के अन्न का सील होता है जिसकी व्याख्या सरयारा में कर आए हैं। गेहूं या जौ का सील एक पौधे में एक ही होता है। सरयारे की जाति के अन्नों के सील में अनेक सील होते हैं और वे कानों के झुमके की तरह नीचे को लटकते हैं। टाक का झूंफ छोटा होता है। इसलिए वह नीचे को लटका नहीं होता।

तिल : तिल लोक विश्वास में बहुत लोकप्रिय रहा है। तिल का दाना सरयारे, टाक और बीथू से भिन्न प्रकार का होता है। तिल के दाने चपटे होते हैं। लोक-कथाओं, आदि में तिल का एक दाना सात बहनों ने खाया था। तिल को प्रायः कच्चा खाया जाता है या भून कर भी खाया जाता है इसका तेल बहुत कीमती होता है।

मूंग : दालों में मूंग का विशेष महत्व है। यह हलकी प्रकृति की दाल है। जल्दी हज़म हो जाती है। इसीलिए इसे मरीजों को प्रायः अधिक खिलाया जाता है।

कोलथ : कोलथ भी एक दाल है। लोगों का विश्वास है कि इससे पत्थरी का रोग स्वतः ठीक हो जाता है। इसलिए पत्थरी के बीमार इसका प्रयोग अधिक करते हैं। इसके जांगले अर्थात् दाल के दाने भी बहुत खाए जाते हैं।

गन्ना : कुल्लू के निचले क्षेत्रों में गन्ना भी खूब हुआ करता था। विशेष रूप से सोमसी के खेतों में गन्ने की अच्छी खेती हुआ करती थी। परन्तु अब इसकी फसल कम हो गई है, और गन्ना कुल्लू से लगभग गायब हो गया।

आलू : कुल्लू क्षेत्र में आलू बहुत देर के बाद पहुंचा है। इसलिए संभवतः इसे पाखले आलू कहते हैं। पाखले का अर्थ अजनबी होता है। अजनबी से अभिप्रायः अपिरिचत है और मूल रूप में इसे हम चिचड़े आलू से भिन्नता दर्शाने के लिए इसे पाखले कहते हैं। दूसरा शब्द भी इसके लिए निर्धारित है ''फरंगी आलू''।

चिचड़े आलू : चिचड़े आलू संभवतः कुल्लू क्षेत्र के प्राचीन आलू है और इसलिए इनको हम दो भिन्न नामों से भिन्नता दर्शाते हैं - चिचड़े आलू और पाखले आलू। पाखले आलू को जब हम दूसरा नाम फंरगी रे आलू करते हैं तो यह स्पष्ट हो गया है कि चिचड़े आलू स्थानीय आलू हैं और पाखले

आलू बाहर के देश ''फरंगी'' अर्थात् अंग्रेजी आलू हैं। देखना मात्र यह है कि विदेशी अर्थात् यूरोप से आए जितने लोग यहां बस गए है, उनमें से किसने पहले-पहल यह आलू लाए हैं। हम जानते हैं कि इन विदेशी निवासियों ने कुल्लू में सेबों आदि फलों की कई किसमें लाई हैं। आलू भी किसी एक ने अवश्य ही अपने देश से लाए है।

कचालू : कचालू का शब्दिक अर्थ है ''कच्चे आलू'। देखना यह है कि क्या चिचड़े आलुओं को ही कचालू कहते हैं, या फिर कोई और आलू है। सामान्यतः इसका प्रयोग चिचड़े आलू अर्थ में होता है। चिचड़े आलू की एक विशेषता यह है कि इन आलुओं के खाने से खिश-खिश नहीं लगती। चिचड़े आलू के स्पष्ट रूप से दो भेद हैं - एक सिलरी आलू और दूसरे पिंदले आलू। पिंदले आलू में कुछ एक ऐसे निकल आते हैं जिन के खाने से गले में खिर-खिरी होती हे। परन्तु भेद जरा कठिन है। तभी तो कहते हैं ''इसे तो सिलरी-पिंदलु रा पता नहीं है। इससे और क्या आशा की जा सकती है।'' कचालुओं की एक बड़ी विशेषता है कि उसके बड़े चौड़े पते होते हैं, जिनकी सब्जी तो हम बनाते ही हैं, साथ ही **पतरोड़ू** भी बड़े स्वादिष्ट होते है। पतरोड़ू या पौचे का नाम सुनते ही मुंह में पानी भर आता है। हमारी दादी मां अनेक प्रकार के मसाले, चटनी आदि डाल कर इतने स्वादिष्ट पौचे बनाती थी कि ताजा-ताजा पौचे तो बिना रोटी के ही खाते थे, फिर ठंडे पौचों को तड़का लगा कर और भी मज़ेदार सब्जी बना लेती थी। शनोहली (भादों संक्रान्ति) के साज़े को 'पतरोड़े रा साजा या पौचे का साजा' के नाम से बनाया जाता है।

घण्डियाली : यों तो कचालू और घण्डियाली में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। दोनों में भिन्नता ढूंढना कठिन है। यदि ध्यान से देखा जाए तो घण्डियाली के पते लम्बे और कम चौड़े होते हैं, तथा उसके डण्ठल लाल रंग के होते हैं। इसके विपरीत कचालू के डण्ठल सफेद धारी के होते हैं तथा उसके पते बहुत चौड़े होते हैं। कुछ लोग इस अन्तर को नहीं जानते, परन्तु घण्डियाली के पते जरा पकने (सीटने) में अधिक देरी लगाते हैं। कचालू के पते शीघ्र ही पक जाते हैं। इन दोनों प्रकार के आलुओं में विशेषता यह है कि इन दोनों के पते, डण्ठल और जड़े (आलू) खाए जाते हैं। कचालू एवं चिचड़े आलू की अपेक्षा घण्डियाली आलू आकार में बड़े होते हैं।

अध्यक्ष,
देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम,
देवप्रस्थ भवन, ढालपुर, कुल्लू (हि.प्र.)

व्यक्तित्त्व

गढ़वाल के यशस्वी सेनापति माधोसिंह भण्डारी

डॉ. सुशील कुमार कोटनाला

माधोसिंह भण्डारी गढ़वाल राज्य के ४६वें परमारवंशीय राजा महिपत शाह (१६२९-१६४६ शासनकाल) के तीन प्रमुख सेनापतियों– रिखोल लोदी, बनवारी दास तथा माधो सिंह में से एक थे। गढ़वाल में माधोसिंह भण्डारी लब्ध प्रतिष्ठित महायोद्धा हैं।[१] मलेथा की समतल किन्तु बंजर भूमि को सिंचित कृषि भूमि में बदलने का श्रेय माधोसिंह भण्डारी को ही जाता है। मलेथा के खेतों में केवल मोटे अनाज का ही उत्पादन किया जाता था। इस बात की शिकायत उनकी पत्नी उदीना ने उनसे की। इस पर वीर माधोसिंह भण्डरी ने मलेथा गांव की जनता के सहयोग से भूमि के उतर दिशा में बह रही चन्द्रभागा नदी से मलेथा की समधरातल भूमि तक एक नहर बनाई। इस नहर के निर्माण के समय चट्टानों को तोड़कर कर सुंरग भी बनाई गई। इस सुरंग की लम्बाई २२५ फुट, ऊंचाई ३ फुट और चौड़ाई ३ फुट है। यह सुंरग माधोसिंह भण्डारी की वास्तु एवं अभियांत्रिकी के ज्ञान का परिचय देती है। इस सुंरग को बनाने में माधोसिंह भण्डारी की अपार ऊर्जा लगी। मलेथावासियों ने माधोसिंह भण्डारी का भरपूर सहयोग किया। किन्तु लोकमान्यता है कि दुर्भाग्य से नदी का पानी नहर में नहीं चढ़ पाया। इस कारण माधोसिंह भण्डारी अत्यधिक दुखी हुए। एक रात्रि स्वप्न में उन्हें अपनी कुलदेवी के दर्शन हुए। कुलदेवी ने उन्हें संकेत दिया कि यदि वे अपने इकलौते पुत्र गजेसिंह की बलि सुंरग में बाधक शक्ति की तृप्ति के लिए दे देंगे तो नहर में पानी बहने लगेगा। प्रातः काल जाग जाने पर माधोसिंह भण्डारी को स्वप्न की स्मृति हुई और उन्होंने यह बात अपनी पत्नी उदीना को बताई। उदीना इसके लिए सहमत नहीं हुई तक उन्होंने गांव के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए अपने पुत्र गजेसिंह के सम्मुख बलि देने का प्रस्ताव रखा जिसे वीर पुत्र गजेसिंह ने क्षत्रिय धर्म का परिचय देते हुए सहर्ष स्वीकार कर लिया।[२] इस प्रकार अपने पुत्र गजेसिंह की सहमति से पिता माधोसिंह भण्डारी ने अपने इकलौते पुत्र की बलि भेंट कर दी।[३] देखते ही देखते पानी नहर से बहते हुए मलेथा के सूखे खेतों तक जा पहुंचा। आज भी बद्रीनाथ राजमार्ग पर श्रीनगर से ऋषिकेश की ओर ६ कि.मी. दूर अलकनंदा तट पर मलेथा गांव विद्यमान है। माधोसिंह भण्डारी द्वारा निर्मित नहर एवं सुरंग यथास्थिति में आज भी मलेथा के खेतों की सिंचाई कर रही है। वीर माधोसिंह भण्डारी की भव्य प्रतिमा गांव के शीर्ष पर स्थापित की गई है जो समाज को त्याग एवं परिश्रम की प्रेरणा देती है।[४]

माधोसिंह भण्डारी का जन्म सन् १५८५ में सुप्रसिद्ध योद्धा कालू भण्डारी के घर में हुआ। वीर एवं प्रतापी पिता से वीरता की गाथाएं सुनते हुए माधोसिंह भण्डारी तरुणाई में ही गढ़वाल राज्य की

सेना में सैनिक बनकर प्रविष्ट हुए। अपने अदम्य साहस एवं बुद्धिमता से आप गढ़वाल नरेश महिपत शाह के प्रधान सेनापति नियुक्त हुए।[५] महिपत शाह के समय तिब्बत से आक्रमणकारी नीती दर्रा के रास्ते गढ़वाल राज्य पर आक्रमण करते थे, दशोली एवं पैनखंडा क्षेत्रों की जनता को लूटकर वे गढ़वाल नरेश की सेना के वहां पहुंचने से पहले ही वापस तिब्बत चले जाते थे। इस समस्या का स्थायी समाधान करने के लिए महिपत शाह ने अपने वीर सेनापति माधोसिंह भण्डारी को गढ़वाल की सुरक्षा तथा सीमा विस्तार का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया।

माधोसिंह भण्डारी महिपत शाह की विशाल सेना लेकर तिब्बत विजय के लिए गए और तिब्बत की हजारों वर्ग कि.मी. भूमि पर विजय प्राप्त करते हुए वहां अनेक विशाल चबूतरों का निर्माण करते चले गए। इनके बनाए हुए अनेक विशाल चबूतरे आज भी चीन अधिकृत तिब्बत में विद्यमान हैं। माधोसिंह भण्डारी की यह तिब्बत विजय यात्रा सुप्रसिद्ध मलेथा कूल (नहर)के निर्माण के बाद की है। अपनी इस विजय यात्रा में दुर्भाग्यवश वे गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गए और छोटा चीन नामक स्थान पर उनकी मृत्यु हो गई। इतिहासकार पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाल का इतिहास' में वर्णन किया है कि मरते समय माधो सिंह ने सेना को यह बताया कि मेरी मृत्यु निश्चित है। आप मेरी मृत्यु की जानकारी सार्वजनिक मत करना। यदि तुमने मेरे मृत्यु की सूचना सार्वजनिक कर दी तो तुम तिब्बत से जीवित वापस नहीं लौट सकते इसलिए मेरे शव को तेल में भून कर, कपड़े में लपेटकर संदूक में बंद कर हरिद्वार ले जा कर दाह संस्कार करने के बाद ही मृत्यु की सूचना को सार्वजनिक करना। सैनिक और सरदारों ने वैसा ही किया और सेना सकुशल वापस गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर लौटी।[६]

महिपत शाह की रानी कर्णावती थी जो इतिहास में नाक काटने वाली रानी के नाम से प्रसिद्ध है।[७] माधोसिंह भण्डारी ने महारानी कर्णावती का भी शासन के संचालन में महत्वपूर्ण सहयोग किया था, ऐसा अनेक इतिहासकारों का मानना है। शाहजहां ने महिपत शाह का अपने राज्याभिषेक के समय आगरा में उपस्थित न रहने के कारण महिपत शाह की मृत्यु के बाद अपने सेनापति नजाबतखान को तीस हजार घुड़ सवारों तथा पैदल सैनिकों के साथ गढ़वाल राज्य पर आक्रमण करने भेजा। ऐसे विषम समय में रानी कर्णावती ने सीधा संघर्ष करने की अपेक्षा कूटनीति से कार्य लेना उचित समझा। रानी कर्णावती ने उन्हें अपनी सीमा में प्रवेश करने दिया। लेकिन जब वे वर्तमान समय के लक्ष्मण झूला से आगे बढ़े तो उनके आगे और पीछे के मार्ग पूर्णतः विशाल चट्टानों को गिराकर अवरुद्ध कर दिए। गंगा के तट और पर्वतीय मार्ग से अनभिज्ञ मुगल सैनिकों के पास खाद्य सामग्री समाप्त होने लगी। उनके लिए खाद्यपूर्ति के सभी मार्ग पूर्णतः अवरुद्ध थे।

मुगलसेना कमजोर पड़ने लगी और ऐसे में सेनापति नजाबतखान ने रानी के पास संधि का संदेश भेजा लेकिन उसे ठुकरा दिया गया। मुगल सेना की स्थिति बदतर हो गई थी। रानी चाहती तो सभी सैनिकों को मौत के घाट उतार देती लेकिन उन्होंने मुगलों को सजा देने का अन्य उपाय

निकाला। रानी ने संदेश भिजवाया कि वह सैनिकों को जीवनदान दे सकती है लेकिन इसके लिए उन्हें अपनी नाक कटवानी होंगी। सैनिकों को भी लगा कि नाक कट भी गई तो जीवन तो रहेगा। मुगल सैनिकों के हथियार छीन लिए गए और सभी सैनिकों की एक-एक करके नाक काट दी गई। सेनापति नजाबत खान नाक कटने के कारण इतना लज्जित हुआ कि उसने आगरा की ओर लौटते हुए आत्महत्या कर ली।[८]

इस ऐतिहासिक घटना के पश्चात् रानी कर्णावती ने दून घाटी को भी पुनः गढ़वाल राज्य के अधिकार क्षेत्र में ले लिया।

गढ़वाल के प्राचीन ग्रन्थों और गीतों में रानी कर्णावती की प्रशस्ति में उनके द्वारा निर्मित बावड़ियों, तालाबों, कुओं आदि का वर्णन आता है।

ऐसा कहा जाता है कि माधोसिंह भण्डारी के प्रयास से सन् १६३४ ई. में बद्रीनाथ धाम की यात्रा के दौरान छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास की सिक्ख गुरु हरगोविन्द सिंह के साथ रानी कर्णावती से श्रीनगर दरबार में भेंट हुई। इन दोनों महापुरुषों का उद्देश्य था, मुगलों के बर्बर शासन से मुक्ति प्राप्त करके हिन्दू धर्म की रक्षा करना। समर्थ गुरु रामदास ने कर्णावती से पूछा कि ''क्या पतित पावनी गंगा की सप्तधाराओं से सिंचित भूखण्ड में यह शक्ति है कि वैदिक धर्म एवम् राष्ट्र की मर्यादा की रक्षा के लिए मुगल शक्ति से लोहा ले सकें? इस पर रानी कर्णावती ने विनम्रता पूर्वक उतर दिया कि पूज्य गुरुदेव, इस पुनीत कर्तव्य के लिए हम गढ़वाली सदैव कटिबद्ध होकर उपस्थित हैं।

गढ़वाल के लोक जीवन में यह कहावत प्रचलित है –

एक सिंह रण वण, एक सिंह गाय का।
एक सिंह माधोसिंह और सिंह काहे का।।

अर्थात् एक सिंह वन में रहता है। दूसरा सींग पवित्र गौ माता का है। एक सिंह स्वयं माधोसिंह भण्डारी है और सिंह किस काम के हैं? अर्थात् किसी काम के नहीं हैं?

माधोसिंह भण्डारी की लोक गाथा में तत्कालीन गढ़वाल के कठोर जीवन का बोध होता है साथ ही इस कठोर जीवन में समाधान खोजने वाले गढ़वाली योद्धाओं का भी परिचय मिलता है। यह वीर सेनापति अपने सफल सैन्य अभियानों के साथ गांव के विकास के लिए भी अपने सर्वस्व की बलि दे देता है। सुप्रसिद्ध भूगोलबेत्ता एवं प्रमुख समाजसेवी डॉ. नित्यानन्द जिन्होंने वर्ष १९९१ में उतरकाशी में भयंकर त्रासदी के बाद ऊपरी गंगा घाटी के निवासियों की सेवा में भागीरथी तट पर सेवाश्रम की स्थापना कर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था, के अनुसार ''माधोसिंह भण्डारी गढ़वाल के दधीचि हैं जिन्होंने अपने स्वर्णिम भविष्य के आधार इकलौते पुत्र को गांव के हित के लिए बलिदान कर दिया था।''

सुप्रसिद्ध गढ़वाली गायक एवं नाटककार जीत सिंह नेगी ने अपने गीति नाट्य में माधो सिंह भण्डारी की लोकगाथा का अत्यन्त मार्मिक एवं गरिमापूर्ण वर्णन किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक

'मलेथा की कूल' में माधोसिंह भण्डारी को गढ़वाल का महान ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है।[६]

माधो सिंह भण्डारी की यह लोकगाथा भावार्थ सहित प्रस्तुत है –

कालो भण्डारी को बेटा माधो सिंह।
भडु मा को भड़ तू माधो सिंह।
गढ़-नरेश को सांसु माधो सिंह।
मलेथा की बुझौंदु तीस माधो सिंह।
बलि बेटा गजे सिंह की देंदु माधो सिंह।
मलेथा की कूल बड़ौदु माधो सिंह।
तू राणी मां को रै सहारू माधो सिंह।
नाक दुश्मनु की कटौंदु रे माधो सिंह।
राणी कर्णावती हूवै अमर, माधो सिंह।
गढ़देश को फैलार तू माधो सिंह।
तिब्बत मा छन तेरा चौतरा माधो सिंह।
दुश्मनु तैं रै काल माधो सिंह।
तेरा नौं सी ही जीत रे माधो सिंह
मन सी पैली बतौंदु, रीत माधो सिंह
अपड़ा नौं सी दिलौंदु जीत माधो सिंह।
फिर गंगा मा समै जांदु माधो सिंह।
गढ़देश मा अमर हूवै जांदु माधो सिंह।
महिपत शाह माराज को भड़ माधो सिंह।
गढ़ देश मा अमर च माधो सिंह।

भावार्थ : माधो सिंह भण्डारी कालो भण्डारी का बेटा है। वह योद्धाओं का भी योद्धा है। गढ़वाल के राजा महिपत शाह का वह विश्वसनीय सेनापति है। मलेथा की ऊसर भूमि की भूख-प्यास को शान्त करने वाला माधो सिंह ही है। मलेथा की सुप्रसिद्ध नहर बनाने के लिए माधो सिंह भण्डारी ने अपने पुत्र का बलिदान दिया है। वह महारानी कर्णावती के प्रमुख सहयोगी रहे हैं। उन्होंने गढ़वाल पर आक्रमण करने वाले मुगलों की नाक कटवाने की योजना बनाई थी। मुगलों को पराजित करने वाले इस योद्धा ने स्वयं अनाम रहते इसका श्रेय अपनी महारानी कर्णावती को दिया। माधो सिंह भण्डारी गढ़वाल-राज्य की सीमाओं का विस्तार करने वाला यशस्वी सेनापति है। तिब्बत में आज भी माधो सिंह द्वारा निर्मित विशाल चबूतरे विद्यमान हैं। शत्रुओं के लिए माधो सिंह मृत्यु का पर्याय रहा है। माधो सिंह का नाम सुनते ही शत्रु सपर्मण कर देता था और गढ़वाल-राज्य की विजय हो जाती थी। तिब्बत की सीमा पर युद्धरत माधो सिंह भण्डारी ने अपने साथी योद्धाओं से अपनी अस्वस्थता के कारण अपनी मृत्यु के पश्चात् की सारी विधियां बताई, जिससे शत्रुओं को माधो सिंह के निधन का पता न चले। वीर माधो सिंह हरिद्वार में गंगा के तट पर दाह संस्कार के पश्चात गंगा की तरंगों में विलीन हो जाते हैं। वीर माधो सिंह गढ़वाल राज्य में अपने अनेक यशस्वी कर्मों के कारण अमर हैं। वीर माधो सिंह भण्डारी गढ़वाल नरेश महिपत शाह के प्रमुख सेनापति हैं। गढ़वाल राज्य में माधो सिंह

भण्डारी अमर हैं।

संदर्भ :

१. शिवप्रसाद डबराल/उत्तराखण्ड का इतिहास

२. हेमवन्ती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर में अंग्रेजी के विभागाध्यक्ष आचार्य डी. आर. पुरोहित के अनुसार माधो सिंह भण्डारी की पत्नी का नाम उदीना नहीं था। उनका यह भी मत है कि उनके पुत्र गजे सिंह राजदरबार में मन्त्री थे। उन्होंने अपने दूसरे पुत्र की बलि दी थी जिसके नाम का उल्लेख नहीं मिलता है।

३. उतराखण्ड के गांधी नाम से विख्यात प्रमुख आन्दोलनकारी स्वर्गीय श्री इन्द्रमणि बड़ोनी सुप्रसिद्ध रंगकर्मी रहे हैं, उन्होंने माधोसिंह भण्डारी नाटक का मंचन अनेक राष्ट्रीय स्तर के मंचों पर किया है। उन्होंने उदीना को माधो सिंह भण्डारी की पत्नी तथा गजेसिंह को माधोसिंह का पुत्र बताया है।

४. उनका जन्म मलेथा गांव में हुआ था, कुछ लोकगाथाओं के अनुसार उनकी बहन का विवाह इस गांव में हुआ था। जबकि एक अन्य लोकगाथा में मलेथा उनकी ससुराल बताई गई है। इनके पिता कालो भण्डारी थे, जिन्होंने गढ़वाल के ४४वें परमारवंशीय राजा मानशाह शासनकाल १५६१-१६१० की जहांगीर (शासनकाल १६०५-१६२७ई.) से हुए भूमिविवाद पर सहयोग किया था।

अक्तूबर १६०५ को अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर सिंहासन पर बैठा तथा मृत्यु पर्यन्त नवम्बर १६२७ तक शासक रहा।

५. डॉ. भक्त दर्शन, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां।

६. पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास/पंचम संस्करण, २००४, भागीरथी प्रकाशन गृह, बैराड़ी, नई टिहरी पृष्ठ १८३-१८५

७. अब्दुल हमीर लाहौरी ने शाहजहां के कार्यकाल पर लिखित 'बादशाहनामा' या पादशाहनामा' में तथा शम्सुद्दौला खान ने 'मासिर अल उमरा' में गढ़वाल की रानी कर्णावती का उल्लेख किया है।

८. इटली के लेखक निकोलाओ मानुची जब सत्रहवीं शताब्दी में भारत आए तब उन्होंने शाहजहां के पुत्र औंरगजेब के समय मुगल दरबार में काम किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'स्टोरिया डो मोगोर' अर्थात् 'मुगल इण्डिया' में गढ़वाल की एक रानी के बारे में बताया है जिसने मुगल सैनिकों की नाक काटी थी।

९. जीत सिंह नेगी, मलेथा की कूल

१५-ए फ्रेण्डस एनकलेव, पो. डिफेंस
कॉलोनी, देहरादून (उतराखण्ड)

ठाकुर राम सिंह जी के साथ मेरा अनुभव

मोतीलाल जालान

जीवन में ऐसे कुछ दिव्य पुरुषों से व्यक्ति की मुलाकात हो जाती जो उसके जीवन की दिशा और दशा दोनों बदल देते हैं, ऐसे ही एक दिव्य राष्ट्र ऋषि का सानिध्य मुझे भी मेरे जीवन में मिला जिसने मेरे साधारण जीवन को असाधारण कार्य के लिए समर्पित करवा दिया। उस दिव्य आत्मा का नाम हैं पूजनीय ठाकुर राम सिंह जी।

मेरा जन्म राजस्थान के सिकर जिले के लक्ष्मणगढ़ गांव में १९४३ में हुआ था। मेरे दादाजी पूज्य मेघराज जी उस समय गुवाहाटी में रहते थे, जब मेरी आयु ८ वर्ष की हुई तब मुझे और मेरे भाइयों को गुवाहाटी भेज दिया गया था। ठाकुर जी से मेरा दिव्य परिचय गुवाहाटी में ही हुआ। ठाकुर जी के साथ मेरी प्रथम मुलाकात ने कुछ ऐसा परिवर्तन मेरे अन्दर किया कि मैं आजीवन उनका मुरीद बन गया। राजस्थान से गुवाहाटी आने के बाद एक दिन फैन्सी बाजार में टहलते-टहलते मैंने देखा कि ३ नं. रेलवे गेट के पास एक मैदान में कुछ लड़के कबड्डी खेल रहे हैं। मैं उनको खेलते देखने लगा और करीब दो-तीन दिन रोजाना ठीक उसी समय पर मैदान में जाता और उनको खेल खेलते देखता। इच्छा मेरी भी हुई कि मैं भी खेलू परन्तु अनजान लोगों को कह नहीं पाया। तीसरे दिन मैदान में एक लम्बा और तगड़ा आदमी हॉफ पेन्ट (खाखी निकट) पहन कर आया, जिसने बच्चों को एक कहानी सुनाई, मैं भी नजदीक जाकर कहानी सुनने लगा, उस पुरुष ने मुझे पास बुलाकर मेरी परिचय पूछा तो मैंने कहा मेरा नाम मोतीलाल जालान है और मैं मेघराज जी का पोता हूं। तब उन्होंने कहा तुम सब राजस्थान से आए हो ना, असल में मेरे दादाजी और ठाकुर जी का पहले से परिचय था और दादाजी ने ठाकुर जी से कह रखा था कि उनके दो पोते राजस्थान से यहां आने वाले हैं, ठाकुर जी ने मुझे रोज मैदान में आकर खेलने को कहा और इस नियमित कार्य को संघ की शाखा कहते हैं ऐसा समझाया।

दो दिन तक तो सब ठीक चला लेकिन एक दिन खेल-खेल में एक लड़के से मेरी हाथापायी हो गई। उस लड़के ने मेरी शिकायत ठाकुर जी से कर दी, मेरी उम्र तब करीब आठ या नौ साल थी। ठाकुर जी ने मुझे बुलाकर बड़ी जोर से मेरा कान पकड़कर फटकार लगाई, और कहा कि शाम को तुम्हारे दादाजी से मिलकर सब बताऊंगा, सांय तक जैसे तैसे मेरा दिन निकला और जब ठाकुर जी घर आए तो मेरा डर के मारे बुरा हाल था, क्योंकि मेरे दादाजी बच्चों से जितना प्रेम करते थे, गलती करने पर उतना ही गुस्सा भी करते थे, परन्तु ठाकुर जी ने जो बातें मेरे दादाजी से कही उसने मुझे उनका भक्त बना दिया। ठाकुर जी ने कहा मोती का शारीरिक बहुत अच्छा हैं, अच्छा खेलता है, व्यायाम करता है, इसे आप रोज नियमित रूप से शाखा भेजिए। इस प्रकार ठाकुर जी ने जो बातें मेरे घर आकर कही वह मुझे आज तक याद है।

अब ठाकुर जी जब भी गुवाहाटी में रहते, मैं रोज उनसे मिलता और उनके साथ शाखा के कार्यों में शामिल होता मेरे दादाजी ने मेरा दाखिला लालचन्द ओंकारमल गोयन्का हिन्दी हाईस्कूल में करवा दिया था, और यहां से लड़कों को रोज मैं सायं काल शाखा में ले जाता था।

दादाजी का शरीर जाने के बाद ठाकुर जी का बहुत कम आना जाना होता था। मेरे पिता जी का तो संघ से जरा भी परिचय नहीं था। इसलिए शाखा में जाना एकदम मना करते थे। लेकिन मैं बराबर जाता रहा। मैं क्लास ५ से १० तक लालचन्द ओंकारमल हिन्दी हाईस्कूल में ही पढ़ा था। यह संघ स्थान के बहुत पास ही था। इसलिए मेरा संघ शाखा नित्य जाना होता था। वे सारे खेल स्कूल में शुरु कर दिए थे। इसलिए विद्यार्थियों की रुचि खेल में बढ़ी और बच्चे शाखा में आने लगे। इसलिए मुझे श्री राम सिंह जी ने उमानन्द सायम् शाखा का मुख्य शिक्षक का कार्य दिया। मेरा शरीर बहुत अच्छा था। इसलिए मुझे प्रभात शाखा में भी आने के लिए कहा। शारीरिक कार्यक्रम अच्छा होने के कारण मुझे ओ.टी.सी. जाने के लिए भी कहा। लेकिन रामसिंह ने कहां कि तुम जा सकते हो, लेकिन अपने रुपयों से। इसलिए मुझे कहा कि तुम पाञ्चजन्य और Organiser पेपर बेच कर रुपया जमा करो और मैं बहुत चेष्टा करके रुपया जमा किया। १९६० में नारंगी में प्रथम वर्ष ओ.टी.सी. किया। इसमें गुरुजी से परिचय ठाकुर जी ने कराया। साक्षात् ब्रह्मऋषि स्वरूप पूजनीय गुरुजी से मिलकर मेरा रोम-रोम पवित्र हो गया था। ठाकुर जी प्राय स्वयंसेवकों से बराबर मिलते रहते थे। चाहे बालक हो या तरुण सब से मिलते रहते थे। सब से दिन भर की जानकारी लेते थे। बालकों से तरुणों से भी संघ कार्य के साथ-साथ पढ़ाई के बारे में पूछते थे। प्रायः सारे दिन मिलना ही कार्य था।

शाखा बहुत कम लोग जानते हैं कि ठाकुर जी एक आंख खराब थी, परन्तु वह कभी इस बात को न जाहिर करते थे न परवाह करते थे। ठाकुर जी केवल संघ कार्य से लोगों को जोड़ने के लिए अपने शरीर एवं स्थास्थ्य की चिन्ता न करते हुए सदैव कार्य करते रहे। ओ.टी.सी के समय १ मास प्रवास में ही थे। उस समय पुराना असम (अभी ७ प्रान्त हैं) यहां सातों प्रान्त से स्वयंसेवकों को तैयारी करना, यही कार्य था। इसके बाद ७ दिनों तक जहां ओ.टी.सी. का स्थान (नारंगी) था। यहां स्वयंसेवक रहने का स्थान, अधिकारी निवास, भोजन की व्यवस्था, बौद्धिक के लिए स्थान, बाथरूम इस प्रकार सारी व्यवस्था का ध्यान देना। यह सारा खुद देखते थे।

मेरा तो बहुत अच्छी तरह से ध्यान रखते थे। मुझे अपना छोटा भाई ही समझते थे। यदि कभी गलती होती थी बहुत अच्छी तरह समझाते थे। मैं ओ.टी.सी. करके आया था कि इन्होंने कहां कि श्री गुरुजी का भी आग्रह है कि पाञ्चजन्य का वितरण तो ठीक हो रहा है। परन्तु Organiser पर अधिक ध्यान देना जरुरी है। इसलिए इन्होंने आग्रह करके कहां कि जरूर ध्यान देना। तीन साल तक कठिन परिश्रम करके संघ साहित्य को पूरे असम में पहुंचाना प्रारंभ कर दिया। इस कार्य में ठाकुर जी ने मेरा पूर्ण सहयोग किया।

इस समय छोटी बहन की कलकता में शादी निश्चित हो गई। यह चिन्ता हुई कि कलकता में तो ऐसा कोई परिचित व्यक्ति नहीं हैं कि शादी के बारे में जानकारी दे सके। तब विचार आया कि श्री ठाकुर जी से बात करके देखूं। जब इन्होंने कहां कि चिन्ता मत करो सारा काम हो जाएगा। इन्होंने

मुझे एक पत्र लिखकर दिया और कहां यह जाकर संघ कार्यालय में देना। इधर मुझसे कलकता की पुरी जानकारी ले ली थी कि वहां का पता क्या है और लड़के का पिताजी का क्या नाम है। इसके बाद श्री ठाकुर जी कलकता कार्यालय में वहां प्रचारक से बात करके पूरी जानकारी लेकर फिर मेरे बारे में बता दिया था। वहां से समाचार मिला कि यह पूरा परिवार स्वयंसेवक हैं और पिताजी जनसंघ के अच्छे कार्यकर्ता हैं। इनकी तरफ से कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। इनसे मैं बात करके सारी बात समझा दूंगा। मैं जब कलकता पहुंचा और लड़के वालों से मिलना हुआ तो बात हुई कि सारी तैयारी हो गई हैं। इन्होंने कहा कि संघ कार्यालय से समाचार मिला और आपके बारे में सारी बात हुई। मैं भी जो पत्र लाया था सो इनको दिया, ये पत्र पढ़कर बहुत आनन्दित हुए। इस प्रकार शादी बहुत ठीक व्यवस्था से हो गई। इस कार्यक्रम में मेरे पिता जी भी बहुत आनन्दित हुए।

दूसरी छोटी बहन की शादी शिलोंग में निश्चित हुई। यह परिवार बहुत बड़ा था और शादी की बारात में २०० लोग आने वाले थे। इतने लोगों के रहने की व्यवस्था अग्रवाल विवाह भवन में ही संभव थी। इसके अलावा दूसरा इतना बड़ा भवन नहीं था। यह भवन पहले से एक बहुत बड़ी पैसे वाली पार्टी की तरफ से बुक हो गया था। हम लोगों को बहुत चिन्ता हो गई कि क्या करेंगे। उस समय जिला स्तर से ऊपर के अधिकारियों की नगांव में दो दिनों की बैठक होनी निश्चित थी और इसमें पूजनीय श्री बाला साहब देवरस रहने निश्चित थे। इसमें मुझे भी रहना था। इसी बीच रविवार को विवाह भवन के बारे में भी बैठक होनी थी। संघ की बैठक में भी रविवार शाम तक स्वयंसेवकों को पहुंचना था। बैठक सोमवार और मंगलवार दो दिनों की थी। श्री ठाकुर जी ने कहां कि तुम सोमवार को आ सकते हो और उन्होंने कहा कि तुम भवन की चिन्ता मत करो भवन हमें जरूर मिल जाएगा। मैं रविवार को जब भवन की बैठक में गया तो भवन हमें मिल गया, ठाकुर जी ने पहले ही भवन के पदाधिकारियों से बात कर ली थी। इस प्रकार श्री ठाकुर जी बिना बताये हर समय स्वयंसेवकों का बहुत ध्यान रखते थे।

श्री रामसिंह जी स्वयंसेवकों के ऊपर अपना खुद का संस्कार देते थे। उनकी कार्यशैली सभी के लिए प्रेरणादायक रही है।

शीतशिविर : प्रारंभ में शीतशिविर तीन बार मालीगांव की गौशाला में हुआ था। यह स्थान शिविर के लिए खास अच्छा नहीं था, लेकिन श्री ठाकुर जी ने खुद और स्वयंसेवकों ने मिलकर बड़े आनन्द से इसमें शीतशिविर का आयोजन किया। यहां स्वयंसेवकों के द्वारा बनाई गई चाली थी। इसमें रहना, खाने की व्यवस्था, इसी में बौद्धिक इसी प्रकार जैसे-तैसे कार्यक्रम करते थे।

तम्बू में शीत शिविर : इसके बाद ठाकुर जी और सबने मिलकर तय किया कि शीत शिविर तम्बू में लगायेंगे, परन्तु तम्बुओं को भाड़े पर लेना बड़े खर्च का काम था। ठाकुर जी ने मिलट्री के पुराने कहां मिल सकतें हैं इसके लिए गुवाहाटी के ही एक स्वयंसेवक रामाशिशि ठाकुर जी को जिम्मा दिया। रामाशिशिजी ने रामसिंह जी को बताया कि रंगीया में मिलेट्री के पुराने सामान की निलामी होने वाली है, वहीं पुराने तम्बुओं की निलामी होगी। रामसिंह जी अन्य दो स्वयंसेवकों को लेकर रंगीया गए, मिलेट्री के अधिकारियों से बातचीत कर, बड़ी ही न्यूनतम राशि में तम्बू ले आए।

मिलेट्री से खरीदे गए तम्बू, वैसे तो मजबूत थे परन्तु कई जगहों से फटे हुए थे, उन्हें इस हालात में काम में नहीं लिया जा सकता था। रामसिंह जी ने मुझे और अन्य कुछ स्वयंसेवकों को बुलाया और तम्बुओं को अपने हाथों से सिलाई कर ठीक किया।

करीब १० वर्षों तक इन तम्बुओं का व्यवहार शीतशिविर के लिए किया जाता रहा।

कामपुर में शीतशिविर में पूजनीय गुरुजी का सानिध्य : गुवाहाटी विभाग में आयोजित शीत शिविरों में मैं प्राय ठाकुर जी के साथ रहता था, परन्तु एक बार गुवाहाटी और नगांव विभाग को मिलाकर शीतशिविर का आयोजन नगांव जिले के कामपुर में किया गया, यह शिविर तीन दिन का था और इसमें गुवाहाटी से २४८ और नगांव से ९० कुल ३३८ स्वयंसेवकों ने भाग लिया था, शिविर में तीन दिन तक परम पूजनीय गुरुजी उपस्थित थे। शिविर की व्यवस्था की दृष्टि में मैं रामसिंह जी के साथ दो दिन पहले ही कामपुर पहुंच गया था। कामपुर में प्रफुल्ल कुमार बोरा जी के पास हम रात को पहुंचे, ठाकुर जी, बोरा जी, मैं और तीन स्वयंसेवक शिविर स्थल पर गए। ठाकुर जी ने बोरा जी को कहा कि तम्बू लगाने के लिए ८-९ स्वयंसेवकों को सुबह बुला लीजिए, प्रातःकाल से लगेंगे तो दो दिन में तम्बू लग पायेंगे। फिर उन्होंने मुझे भी बोरा जी के साथ जा कर कुछ आराम करने को कहा, क्योंकि सुबह सूर्योदय के साथ ही काम प्रारम्भ करना हैं। ठाकुर जी की बात मान कर मैं बोरा जी के साथ चला गया। प्रातः काल जब हम पहुंचे तो देखा कि तम्बू जहां-जहां लगाने हैं, वहां तम्बू रखे हुए हैं। बस उन्हें लगाना मात्र हैं। मैंने आश्चर्य भरे स्वर में ठाकुर जी को पूछा कि क्यों कोई स्वयंसेवकों की टोली हमसे पहले यहां आई थी क्या। ठाकुर जी ने कहां कि टोली तो अब आई हैं, लेकिन इस टोली का समय तम्बुओं को निश्चित स्थानों पर रखने में न लगे, इसलिए मैंने तम्बुओं लगने के स्थान पर रख दिया था। ठाकुर जी द्वारा अकेले इतने तम्बुओं को अलग-अलग स्थान पर रखने की बात ने मुझे बड़ा दुःखी किया कि क्योंकि मैं रात को चला गया, कितना परिश्रम उनको अकेले ही करना पड़ा।

फोटो देखकर ठाकुर जी नाराज : अक्सर शाखा के बाद हम ठाकुर जी के साथ स्वयंसेवकों के घर पर जाया करते थे, एक दिन एक स्वयंसेवक ने ठाकुर जी से फैन्सी बाजार चाय गली की एक होटल (छोटा ढाबा) में चाय पीने चलने का आग्रह किया, ठाकुर जी हम सब स्वयंसेवकों को लेकर वहां पहुंचे। चाय पीते-पीते ठाकुर जी की नजर, होटल में टंग रही एक तस्वीर पर पड़ी, उस तस्वीर में गुवाहाटी गौशाला के मेले में आयोजित एक नाटक का दृश्य था, परन्तु रामसिंह जी की नजर उस चित्र के जिस हिस्से पर पड़ी वह था मंच के दोनों और पूर्ण गणवेश में खड़े दो संघ के स्वयंसेवक। चाय पीने के गए राठी जी को जी ने पूछा कि यह स्वयंसेवक पूर्ण गणवेश में एक फोटा में क्या कर रहे हैं, तो उन्होंने बताया कि नगर संघचालक ने गौशाला मेले में स्वयंसेवकों को Volunteer के लिए भेजा था। ठाकुर जी ने सबसे पहले वह फोटो वहां से हटवाई और फिर संघचालक के घर जाकर, गंभीरता से उन्हें समझाया कि संघ के स्वयंसेवक इस प्रकार गणवेश पहन कर दूसरे संगठन के कार्यक्रम में नहीं जाते, संघचालक जी को भी गलती का आभास हुआ।

चीन युद्ध में सक्रिय भूमिका : चीन द्वारा भारत पर किए गए हमले के दौरान स्थानीय प्रशासन ने असम के तेजपुर शहर को खाली करने का निर्देश दे दिया। ठाकुर जी को जब खबर मिली

तो वह तेजपुर गए, मेरा ननिहाल तेजपुर था, इसलिए मुझे भी साथ ले गए, वहां उन्होंने प्रशासन के अधिकारियों से बातचीत कर उन्हें ऐसा करने को रोका और लोगों की हिम्मत बढ़ाई। चीन युद्ध के पश्चात ठाकुर जी प्रायः सभी कस्बों में जाकर लोगों से मिले और उनके द्वारा दिखाई गई हिम्मत की सराहना की।

ठाकुर जी ने असम के कई प्रतिष्ठित लोगों को अपना मित्र बनाया तथा पहले उन्हें संघ का स्वयंसेवक बनाया फिर धीरे-धीरे उनके पूरे जीवन को ही संघमय बना दिया। स्व. भूमिदेव गोस्वामी, स्व.अपूर्व राम बरुआ, स्व. तीरथ कुमार शर्मा, स्व. गिरिधर शर्मा, स्व. सुरेन्द्र नाथ शर्मा, स्व. रजनीकान्त शर्मा नाम उल्लेखनीय हैं। ठाकुर जी ने डाक्टर, वकील, इंजीनियर, शिक्षक आदि सेवा करने वाले लोगों से संपर्क बनाया। असम के बड़े-बड़े साहित्यकार ठाकुर जी के मित्र बन गए। ठाकुर जी नवयुवकों से बड़ी जल्दी मिल-जुल जाते थे, उन्होंने पहले सबकों स्वयंसेवक बनाया फिर धीरे-धीरे कई लोगों में राष्ट्रसेवा के इस ध्येय पथ में अपना सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा को जागृत करते हुए उन्हें प्रचारक भी बनाया।

ठाकुर जी का असम से जाना यहां द्रुत गति से चल रहे संघ कार्य के लिए बहुत बड़ा धक्का था, ठाकुर जी स्वयं भी यहां से जाना नहीं चाहते थे परन्तु उनकी माता जी की तबीयत बहुत अधिक खराब हो जाने पर पूजनीय गुरुजी ने उन्हें असम से आने को कहा। ठाकुर जी गुरुजी की बात को काट न पाए और असम से संघ कार्य को एक गति प्रदान कर यहां से चले गए।

यहां से जाने के बाद भी वह सदैव असम की चिन्ता करते रहे, असम उनके हृदय में और वह असमवासी के हृदय में बसते थे। ठाकुर जी के जाने के बाद मैं अकेला सा हो गया था, परन्तु उन्होंने सदैव मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान किया। कई बार मैं ठाकुर जी से मिलने दिल्ली आया, वह भी जब भी गुवाहाटी आते तो जरुर मिलते, घर पर आते। ठाकुर जी ने जिस कार्य को असम में प्रारम्भ किया उसे उनके बाद के पदाधिकारियों ने भी संघ कार्य को बड़े परिश्रम से आगे बढ़ाया और आज संघ असम के गांव-गांव एवं कस्बे-कस्बे में है।

आठ गांव, द्वारा सती प्रैस,
गुवाहाटी-७८१००१ (असम)

ठाकुर रामसिंह शताब्दी समारोह

चेतराम गर्ग

ठाकुर रामसिंह शताब्दी समारोह के अन्तर्गत कलियुगाब्द ५११८ विक्रमी संवत् २०७३, श्रावण कृष्ण १२-१३ (३१ जुलाई, २०१६) सांय ५ बजे, रोहिणी सैक्टर १८, अग्रसेन टेक्निकल इन्स्टिच्यूट के सभागार में भव्य कार्यक्रम का आयोजन हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सहसरकार्यवाह माननीय कृष्ण गोपाल जी थे। असम से लोक सभा सांसद रमण डेका जी इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता अग्रेसन इन्स्टिच्यूट के निदेशक डॉ. नन्द किशोर जी ने की।

डॉ. कृष्ण गोपाल जी ने ठाकुर जी के कर्मशील जीवन और असम प्रान्त में किए कार्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि ठाकुर रामसिंह जी जब १९४६ में असम के प्रान्त प्रचारक बन कर गए थे उस समय वहां संघ का कार्य शून्य पर था। परिस्थितियां भी अनुकूल न थी पर ठाकुर जी दृढ़ निश्चय के साथ डट गए। विद्यार्थियों में काम शुरु किया। युवाओं में काम किया। दूर-दूर तक संपर्क किया। तीन-तीन सौ किलोमीटर की दूरी ठाकुर जी मोटर साईकिल द्वारा ही तय कर लेते थे। संघ शाखा बढ़ाने की एक सीमा होती है इसलिए ठाकुर जी ने अन्य क्षेत्रों के कार्य विस्तार पर भी ध्यान दिया। शिक्षा क्षेत्र में विस्तार, धार्मिक क्षेत्र में कार्य, सेवा कार्य को गति मान करना। ऐसे अनेक कार्य वनवासियों तथा विभिन्न जाति समूहों में हिन्दुत्व का विचार संचारित हो इसके लिए सफल प्रयत्न किए गए। उन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है कि आज हमारे पास उस समय के डॉ. दलीप सरकार जैसे उच्च शिक्षा प्राप्त ध्येय निष्ठ कार्यकर्ताओं की श्रृंखला निर्माण हुई। जो अखिल भारतीय स्तर की संस्थाओं का संचालन कर रहे हैं। आज पूरे देश में जितने सेवा कार्य अपने द्वारा चल रहे हैं उस में से १६००० सेवा कार्य अकेले आज उस असम प्रान्त में हैं जो पूरे देश में सर्वाधिक है। ठाकुर जी ने वही कार्य किया जो डाक्टर हेडगेवार जी और गुरुजी ने हिन्दू समाज को संगठित करने को कहा। हम सब भी उसी दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। इन के जीवन से हमें दिशा लेनी है।

दूसरे महत्त्वपूर्ण विषय पर ठाकुर जी ने जो ध्यान दिया वह है भारतीय इतिहास की दृष्टि। बाहरी आक्रमणकारियों से भारतीय शिक्षा पद्धति पर आघात हुआ। बड़ी मात्रा में तो अंग्रेजों ने भारत पर स्थाई राजसत्ता स्थापित करने के उद्देश्य से इतिहास में नये-नये सिद्धान्त गढ़ दिए। आर्य बाहर से आए। यहां के मूल निवासियों को खदेड़कर दक्षिण की ओर धकेल दिया। इस प्रकार की चालों से समाज में विभ्रम पैदा हुआ और उनके द्वारा दी गई शिक्षा का अनुसरण होने लगा। ठाकुर जी ने अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के कार्य के माध्यम से इतिहास के अन्दर आई कमियों को उजागर

किया और भारतीय इतिहास दृष्टि के विचार को आगे बढ़ाया। उसी के आलोक में हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जिला के नेरी स्थान पर ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान की स्थापना की गई। आज वह शोध संस्थान भारतीय इतिहास लेखन का कार्य कर रहा है।

विशिष्ट अतिथि डॉ. रमण डेका जी ने ठाकुर जी के साथ बिताए समय पर चर्चा करते हुए कहा कि मेरा संबन्ध ठाकुर जी से तब आ गया जब में छठीं कक्षा में पढ़ता था। ठाकुर जी हमें शाखा ले जाते थे। वे क्रान्तिकारियों की जीवनी हमें सुनाते थे। हरिसिंह नलवा, वीर हकीकत राय, बन्दा वीर वैरागी, गुरु गोविन्द सिंह आदि महापुरुषों की कहानियां वे हमें सुनाते थे। शरीर और मन की दृढ़ता पर जोर देते थे।

चीन के आक्रमण के समय तेजपुर के कलेक्टर ने वहां के सारे कागज जला दिए और ट्रेजरी का धन नदी में बहा दिया। ठाकुर जी को जब इस स्थिति का पता चला जो ठाकुर जी कुछ स्वयंसेवकों को लेकर तेजपुर पहुंच गए। उन्होंने प्रशासन के अधिकारियों से बात की हमें जनता के अन्दर भय का वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। हम लोगों में विश्वास भरें और लोग यहां से पलायन न करें। ठाकुर जी की अपील का असर प्रशासन तथा जनता दोनों पर दिखाई दिया। इस उद्घोषणा ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया। इससे भी आगे बढ़कर सेना के अधिकारियों तक सब सूचना पहुंचाने का कार्य किया जिससे जनता में विश्वास बनाए रखने का प्रयास किया जा सके।

अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. नन्द किशोर गर्ग जी ने कहा कि मैंने यह जो शिक्षा क्षेत्र को जीवन में चुना वह संघ की प्रेरणा से ही हुआ है। मेरा सौभाग्य है कि आज मानीय ठाकुर जी का शताब्दी समारोह इस संस्थान में ही रहा है। मुझे भी माननीय ठाकुर जी के साथ मिलने का अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में हम सबके लिए प्रेरणा के अनूठे स्रोत हैं।

बाबा साहिब आप्टे स्मारक समिति के अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मीश्वर झा ने कार्यक्रम में पधारे हुए विद्वानों का धन्यवाद किया तथा ठाकुर रामसिंह जी के बताए गए मार्ग पर कार्य करने का आग्रह किया। इस अवसर पर दिल्ली प्रान्त वे वरिष्ठ प्रतिष्ठित गणमान्य विद्वान पधारे हुए जिनमें श्री रमेश प्रकाश , कुलपति एस.पी. बंसल, सुरेश ठाकुर, संदेश शाण्डिलय, लक्ष्मण देव जी, डॉ. राजेश परती, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह क्षेत्र प्रचारक बनवीर, सह क्षेत्र कार्यवाह विजय, प्रान्त प्रचारक हरीश, सुरेन्द्र नाथ शर्मा, कृष्णानन्द सागर, डॉ. हिमेन्द्र राजपूत, कुलवीर शर्मा पधारे हुए थे। यह कार्यक्रम बाबा साहिब आप्टे स्मारक समिति दिल्ली तथा शोध संस्थान नेरी द्वारा आयोजित किया गया।

कैथल

इतिहास संकलन योजना समिति हरियाणा ने कलियुगाब्द ५११८, विक्रमी संवत् २०७३ ज्येष्ठ शुक्ल १२ (१७ जून २०१६) को आर. के. एस. वी. पी जी कालेज में ठाकुर रामसिंह शताब्दी समारोह का आयोजन किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. सतीश मितल जी ने कहा कि ठाकुर रामसिंह जी का जीवन हम सब के लिए प्रेरक है। आज हमें जो इतिहास की समझ है वह उन्हीं की

प्रेरणा से है। हम उन्हीं के मार्गदर्शन पर आगे बढ़े। वे समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन करते रहे। वे संगठन शिल्पी थे। कार्यकर्ता का निर्माण कैसे करना वे इस की परीक्षा लेते रहते थे। ठाकुर जी राष्ट्रीय अध्यक्ष बने। उन्होंने सबके सामने योजना रखी—भारत वर्ष का इतिहास सतत् संघर्ष का रहा है। भारत कभी भी पूरी तरह पराजित नहीं हुआ। आज जो विद्वेप पूर्ण इतिहास का स्वरूप हमारे सामने रखा है इसे बदलना होगा। ठाकुर जी कालगणना के मर्मज्ञ विद्वान थे। १५ वर्ष तक इस विषय को लगातार समाज के हर वर्ग तक ले जाने का प्रयास करते रहे। हरियाणा संस्कृति धरोहर म्युजियम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. महासिंह पुनिया ने अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया।

उनके शताब्दी वर्ष पर पूरे देश में कार्यक्रम हो रहे हैं। हमें भारत के सही इतिहास को भारत कब दुनिया के सामने रखना है। कार्यक्रम के अध्यक्ष कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा ने कहा कि हमें अपने पाठ्य पुस्तकों में भारत के सही इतिहास की जानकारी देने की आवश्यकता है। यह सही समय है जिसे सबको मिलकर भारत की सभ्यता एवं परम्पराओं के आलोक में सही इतिहास लिखा जाना चाहिए।

इस अवसर पर हरियाणा प्रान्त इतिहास संकलन समिति की प्रान्तीय बैठक संपन्न हुई। राष्ट्रीय सचिव श्री शेर सिंह, क्षेत्र मन्त्री अरुण पाण्डे जी, श्री बी. डी. भारद्वाज अध्यक्ष, श्री रणजीत रैणा, मंच संचालन श्री कमलेश शर्मा, प्रान्त प्रचार प्रमुख श्री अनिल तथा नेरी शोध संस्थान के समन्वय श्री चेतराम जी भी कार्यक्रम में उपस्थित थे।

सिरमौर— पांटवा साहिब

सिरमौर जिला के पांटवा साहिब शिव मन्दिर बद्रीपुर के सभागार में सायं ३.३० बजे कलियुगाब्द ५११८ विक्रमी संवत् २०७३, आषाढ़ कृष्ण ७ (२६ जून, २०१६) रविवार को ठाकुर राम सिंह शताब्दी समारोह का आयोजन हुआ। देहरादून से आए डॉ. सुशील कोटनाला जी ने उतराखण्ड के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी एवं समाजसेवक स्वर्गीय माधो सिंह भण्डारी की लोकगाथा सुनाई। उन्होंने कहा कि माधो सिंह भण्डारी का योगदान उतराखण्ड प्रान्त के लिए अस्मरणीय है। समाज के भले के लिए इकलौते पुत्र का बलिदान तथा रानी कर्णावती के सलाहकार व सेनापति के रूप में शत्रुओं का मान मर्दन करने में बहुत बड़ी भूमिका रही है। इतिहास के ऐसे महापुरुषों का स्मरण रखना समाज निर्माण में अतुलनीय योगदान है।

नेरी शोध संस्थान के समन्वय प्रमुख श्री चेतराम गर्ग जी ने ठाकुर रामसिंह जी के जीवन व कार्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि भारतवर्ष का गौरवशाली इतिहास सत्य तथ्यों के साथ प्रकाश में लाना ठाकुर रामसिंह जी का परम लक्ष्य रहा है। इस कार्य के लिए वे सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रवास करते हुए उन्होंने असंख्य विद्वानों के सामने भारतीय कालगणना विश्व की वैज्ञानिक कालगणना है। विदेशियों द्वारा दिए गए मनगढ़त सिद्धान्तों को भी तथ्य के आधार पर उजागर किया। भारत को इतिहास की जानकारी विदेशियों ने नहीं करवाई। उसके लिए हमारे पास वेदों से लेकर पुराणों,

महाभारत रामायण जैसे विशाल ग्रन्थों का भण्डार है। भारत का इतिहास केवल राजाओं, राणों का इतिहास न होकर भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्य की शिक्षा प्राप्त होती है। उसे हमें समझने की आवश्यकता है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता सेवा निवृत उपनिदेशक डॉ. प्रमोद गुप्ता जी ने की और उन्होंने कहा कि इतिहास में आई विकृतियों का निराकरण किया जाना चाहिए तथा इतिहास के सही तथ्य समाज के सामने आने चाहिए। इस अवसर पर श्री भोलेश्वर जी, संजय कौशल जी, नवल अग्रवाल, अधिवक्ता शशि कुमार, सुशील गुप्ता आदि गणमान्य लोग पधारे हुए थे।

शिमला

इस श्रृंखला में शिमला जिला के ठियोग के शाली बाजार के शिव मन्दिर में कार्यक्रम कॉलेज के युवा छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। लोक साहित्य के विद्वान श्री दीपक शर्मा जी ने शताब्दी समारोह के अवसर पर इतिहास में पाण्डूलिपियों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि अपना प्राचीन इतिहास पाण्डुलिपियों में भरा पड़ा है। कुछ पाण्डुलिपियों तो अज्ञानवंश जानकारी न होने के कारण नष्ट कर दी गई है। तो भी अभी अपने हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर पाण्डुलिपियों बिखरी पड़ी है। उन्हें सुरक्षित किए जाने की आवश्यकता है। इन पाण्डूलिपियों में ज्ञान विज्ञान व समग्र इतिहास का रहस्य छिपा है। राष्ट्रीय पाण्डूलिपि मिशन द्वारा चलाए गए अभियान की सराहना करते हुए दीपक शर्मा ने कहा कि लाखों पाण्डुलिपियां खोजी गई हैं। धीरे-धीरे इन पाण्डुलिपियों का अध्ययन करने वाले भी कम होते जा रहे है। ठाकुर राम सिंह जी जिन की हम जन्मशताब्दी समारोह कर रहे उन्होंने पूरे देश में इतिहास के प्रति आई उदासीनता को दूर भगाया और अपने इतिहास के प्रति आस्था व विश्वास खड़ा किया। अपना इतिहास गौरवशाली रहा है। भारत के गौरवशाली इतिहास को युवा शक्ति के सामने लाने की आवश्यकता है।

किन्नौर

किन्नौर जिला के रिकांगपिओ में विश्वहिन्दू परिषद् के मन्त्री श्री देवकुमार जी नेगी ने ठाकुर रामसिंह जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ठाकुर जी का संपूर्ण हिन्दू समाज की शक्ति को सृजित करने के लिए समर्पित रहा है। भारतीय इतिहास का ठाकुर जी को गहरा अध्ययन था। उनका जीवन पूरे समाज के लिए प्रेरक रहा है। हजारों की संख्या में उपस्थित माता बहनों के सामने व्यास पीठ पर बैठे व्यास महाराज जी ने ठाकुर जी के जीवन से प्रेरणा लेने की बात की। इस अवसर पंडित नेजा राम शर्मा, श्री तारा चन्द ठाकुर, श्री दीपक, श्री राजेन्द्र, श्री रविन्द्र, श्रीमती राजकुमारी बिश्ठ आदि गणमान्य लोग उपस्थित थे।

मण्डी

कलियुगाब्द ५११८, विक्रमी संवत् २०७३, आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा (५ जुलाई, २०१६) को मण्डी जिला के करसोग में शताब्दी समारोह का आयोजन हुआ। कार्यक्रम में समाज सेवी श्री हेतराम ठाकुर, श्री विद्यासागर, श्री भगत राम गुप्ता, डॉ. वेद प्रकाश, श्री नेहरू लाल, भारद्वाज गणमान्य विद्वान

पधारे हुए थे। डॉ. गिरधारी लाल ने करसोग जनपद का इतिहास एक विश्लेषण शोधपत्र प्रस्तुत किया जिसमें यहां की सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत का वर्णन किया गया। कार्यक्रम के अध्यक्ष साहित्यकार इ. जवाहर लाल ने ठाकुर जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ठाकुर जी ने अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान की स्थापना कर इतिहास लेखन की परम्परा का एक यशस्वी कार्य किया है। सभागार में भारत के प्राचीन इतिहास और ठाकुर जी के जीवन पर आधारित छाया चित्र की प्रदर्शन लगाई गई थी।

बिलासपुर

इतिहास संकलन योजना समिति हिमाचल प्रदेश एवं शोध संस्थान नेरी के तत्वाधान में ठाकुर रामसिंह जन्मशताब्दी समारोह का आयोजन सरस्वती विद्या मन्दिर घुमारवीं (बिलासपुर) में कलियुगाब्द ५११८, विक्रमी संवत् २०७३, भाद्रपद शुक्ल ७ (४ सितम्बर, २०१६) रविवार को हुआ।

इस अवसर पर अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय सचिव श्री शेर सिंह जी नेरी शोध संस्थान के समन्वय प्रमुख श्री चेतराम जी, प्रदेश के सह सचिव डॉ. सुरेश सोनी जी, डॉ. विकास शर्मा जी और शिक्षा क्षेत्र से जुड़े हुए विद्वान कार्यक्रम में पधारे हुए थे।

श्री शेर सिंह जी ने इतिहास विषय में परिवर्तन की बात करते हुए कहा कि अब समय आ गया है कि हम देश में इतिहास की सही जानकारी अपनी युवा पीढ़ी को दें। श्री चेतराम जी ने ठाकुर जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ठाकुर राम सिंह जी की इतिहास दृष्टि और उससे समाज निर्माण में सहयोग करना सदैव ठाकुर जी के जीवन में रहता था। ठाकुर जी हमारे प्रेरणा स्रोत रहे हैं। वे हमें इतिहास को लिखने और समझने की दिशा दे गए हैं। हमें उनके दिए मार्ग दर्शन पर आगे बढ़ना है।

डॉ. सुरेश सोनी जी ने इतिहास में आई विकृतियों, तथा विदेशी इतिहासकारों की कुटिल नीति पर प्रहार करते हुए कहा कि हमें भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही इतिहास को समझना होगा।

डॉ. आर.के. शुक्ला जी ने बिलासपुर जिला के अमरपुर गांव पर शोध पत्र प्रस्तुत किया। बिलासपुर जिले का अमरपुर गांव उनके ऐतिहासिक विशेषताओं को लिए हुए उन्होंने वहां की सांस्कृतिक एवं धार्मिक सदियों से आ रही परम्पराओं, रितिरिवाजों तथा सामाजिक परिवेश का सजीव चित्र प्रस्तुत किया।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध
संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

लघु उद्योग भारती, हिमाचल प्रदेश

उद्योग हित, राष्ट्र हित

लघु उद्योग भारती, भारत का सबसे बड़ा सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्योगों क लिए समर्पित अखिल भारतीय संगठन है।

MAKE IN INDIA

उद्योगों से सम्बन्धित सभी समस्याओं को दूर करने तथा सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए तत्पर संगठन।

आप भी इस संगठन के सदस्य बनें।

प्रधान : डॉ. विक्रम बिंदल
092185 59555

सचिव : राजीव कंसल
094180 87745

लघु उद्योग भारती, हिमाचल प्रदेश

151, डी.आई.सी. बद्दी, जिला सोलन (हि.प्र.) 173205

Email : lub.himachal@gmail.com